अर्कवंशी क्षत्रियों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

लेखन एवं सम्पादन

इं. आर. ए. सिंह

❊

संग्रह सहयोग

श्री सोबरन सिंह सूर्यवंशी
श्री गोकरन सिंह अर्कवंशी

❊

विशेष सहयोग

श्री बी.एल. सिंह परिहार
श्री मकरन्द सिंह
श्री रामपाल सिंह अर्कवंशी, रुसेना (टाइपिंग)
इं. अमिता सिंह (तकनीकी सहयोग)

❊

आवरण पृष्ठ डिज़ाइन

श्री आकाश विक्रम सिंह सूर्या
ग्राफिक्स डिज़ाइनर, गाजियाबाद।
सुश्री ममता सिंह अर्कवंशी
फैशन डिज़ाइनर, लखनऊ।

Arkawanshi Kshatriyon Ki Aitihasik Prishthbhoomi

लेखक : इं. आर.ए. सिंह

सम्पर्क सूत्र : "माँ सुन्दरी सूर्या निवास"
562/120 रामगढ़ कालोनी,
सी.एम.एस. डिग्री कालेज, गेट नं. 7 के सामने,
कानपुर रोड, लखनऊ- 226012

मुद्रक : दीपक प्रिंटिंग सेन्टर,
115/85 क अग्रवाल भवन,
नयागाँव (पूर्व),
लखनऊ-226001
फोन : - 0522-2629173, 2621982

प्रथम संस्करण : 2005

मूल्य : रु0 75/- मात्र

वेदान्ताचार्य स्वामी
सर्वानन्द सरस्वती
कुलपति-प्राच्य वेद विद्या
शोध संस्थान,
भारतीश्रीपीठम्।

15, सुखदेव विहार
मथुरा रोड,
नई दिल्ली।

संदेश

मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हो रही है कि अर्कवंशी एवं खांगर क्षत्रियों की संयुक्त पृष्ठभूमि को प्रतिबिंबित करने के उद्देश्य से **'अर्कवंशी क्षत्रियों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि'** नामक पुस्तक की रचना इं. आर. ए. सिंहजी द्वारा की गयी है। ये पुस्तक अर्कवंश एवं खांगर वंश से जुड़े तमाम विस्मृत पहलुओं पर समग्रता से प्रकाश डालती है।

अर्कवंशी एवं खांगर क्षत्रिय अत्यन्त वीर, स्वाभिमानी और देशभक्त रहे हैं। खांगर एवं अर्कवंशी क्षत्रियों के सम्बन्ध ऐतिहासिक रूप से सदैव जुड़े रहे हैं और ये क्षत्रिय वंश प्राचीनकाल से ही एक दूसरे के पूरक एवं पोषक रहे हैं, जिसका उल्लेख कई ग्रंथों में मिलता है। इस संबंध में श्री ई. ए. एच. ब्लन्ट द्वारा लिखित 'द कास्ट सिस्टम ऑफ इण्डिया' नामक पुस्तक के पृ. 41 पर भी उल्लेख मिलता है-"Arakhs and Khangars are two separate equal castes forming one brotherhood with one panchayat, and marrying, eating and drinking together" (अर्कवंशी और खांगर दो समान जातियां हैं, जिनकी एक पंचायत है तथा इनके बिरादराना और रोटी-बेटी के संबंध हैं)।

अर्कवंश में जहाँ सम्राट प्रद्योत, महाराज नन्दिवर्धन, राजा भट्ट अर्क, सम्राट हर्षवर्धन, महाराजा तिलोकचंद, महाराजा खड़गसेन, महाराजा सल्हीय सिंह, महाराजा मल्हीय सिंह इत्यादि प्रतापी राजा हुये हैं, वहीं खंगार क्षत्रिय कुल में महाराजा खेत सिंह, सम्पतराय, बरदाई सिंह और महाराजा मेदिनी राय जैसे महान व्यक्तित्व हुये हैं।

प्राचीन अर्कमण्डल के समान महाराजा खेत सिंहजी ने मध्यकाल में अर्कवंशी खांगर क्षत्रियों के संयुक्त संगठन 'खंगार क्षत्रिय संघ' की स्थापना की थी। इस संघ में उस काल के विभिन्न आयुधजीवी स्वतंत्रताप्रेमी क्षत्रिय वंश सम्मिलित हुये थे। प्रथम तराइन युद्ध में, पृथ्वीराज चौहान और खेत सिंह के नेतृत्व में इस संघ के अर्कवंशी खांगर क्षत्रियों ने अद्भुत वीरता दिखाते हुये तुर्क आक्रमणकारी मोहम्मद गौरी के मंसूबों को ध्वस्त कर दिया था। इसी प्रकार इस स्वतंत्रताप्रेमी वीर क्षत्रिय वंश के कुलजों ने अनेकों बार देश की रक्षा हेतु अपने प्राणों का बलिदान दिया। विडम्बना ये है कि जहाँ इस वीर बलिदानी वंश की यश-गाथायें घर-घर में गायी जानी चाहिये थीं, वहीं शासन-सत्ता छिन जाने के बाद इसके कुलज दर-दर की ठोकरें खाने को मजबूर हुये और अपनी परम्पराओं एवं परिस्थितियों के अनुसार कहीं खंगार, कहीं अरख, कहीं मिर्धा, कहीं खेंगर, कहीं खांगरोत, कहीं कनेरिया, कहीं खड़गवंशी तो कहीं खाण्डायत कहलाने लगे। इस वंश के कुलज राजस्थान में आहड़िया, सिसौदवंशी, राणावत; गुजरात में राठौर, सामावंशी; महाराष्ट्र में सावंत, वेंद्रे, इत्यादि नामों से भी जाने जाते हैं।

इस पुस्तक के माध्यम से लेखक ने राष्ट्रहित हेतु सभी क्षत्रियों को एकजुट होने की अपील की है, जो कि अत्यन्त प्रशंसनीय है। विभिन्न नामों और उपाधियों से विभूषित, भारतवर्ष के समस्त प्रदेशों के स्वतंत्रताप्रेमी क्षत्रियों को अपने पूर्वजों के बलिदानों का स्मरण करते हुये 'एक ध्वज-एक संघ' के तहत आज पुनः एकजुट होकर देश की संस्कृति और सीमा रक्षा के निमित्त अपनी आहुति देने हेतु तत्पर रहने और राष्ट्रधर्म की कसौटी पर खरा उतरने की आवश्यकता है। आशा है कि ये पुस्तक समाज में संगठन की भावना का संचार करेगी और वंश की गौरवशाली परम्परा को पुनः स्थापित करने में सहायक सिद्ध होगी।

पुस्तक के लेखक और समाज के सभी कार्यकर्ताओं को मेरी शुभकामनायें और आशीर्वाद।

आपका शुभचिंतक

स्वामी सर्वानन्द सरस्वती

(स्वामी सर्वानन्द सरस्वती)

राधेश्याम गुप्ता
सह संयोजक
केन्द्रीय सहकारिता प्रकोष्ठ

भारतीय जनता पार्टी
Bharatiya Janata Party

संदेश

मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई है कि अर्कवंशी क्षत्रियों जिनका बड़ा ही गौरवशाली इतिहास रहा है, के सम्बन्ध में **'अर्कवंशी क्षत्रियों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि'** नामक ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है। सण्डीला (जनपद हरदोई) के निर्माता महाराजा सल्हीय सिंह अर्कवंशी के शासनकाल, जिसे स्वर्णिम काल कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी, पर भी ग्रंथ में समुचित प्रकाश डाला गया है।

ग्रन्थ में जहां एक ओर अर्कवंशी क्षत्रियों के इतिहास और उसके भारतीय संस्कृति के पोषक के रूप में वर्णन किया गया है, वहीं यह एक शोध भी है क्योंकि उसके बारे में लोगों को समुचित जानकारी नहीं थी। इस दिशा में लेखक का प्रयास सराहनीय है।

मुझे विश्वास है कि यह ग्रन्थ अर्कवंशी क्षत्रियों एवं समस्त भारतीयों के मन में जागृति पैदा करने में सहायक होगा।

इस ऐतिहासिक ग्रन्थ के लिए इसके लेखक इं. आर.ए. सिंह एवं सम्पूर्ण अर्कवंशी क्षत्रिय समाज को बहुत-बहुत बधाई।

शुभकामनाओं सहित।

आपका

(राधेश्याम गुप्ता)

बसन्त लाल सिंह परिहार
मुख्य विपणन अधिकारी

खाद्य तथा रसद विभाग
उत्तर प्रदेश, जवाहर भवन
लखनऊ।

संदेश

मुझे यह जानकर अपार प्रसन्नता हुयी **है** कि इं. आर. ए. सिंह जी ने **'अर्कवंशी क्षत्रियों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि'** नामक शोधपरक ग्रन्थ की रचना विभिन्न ऐतिहासिक स्रोतों के आधार पर की है। अर्कवंशी क्षत्रियों के संबंध में अनेक लेखकों ने पहले भी बहुत कुछ लिखा है, परन्तु यह पुस्तक अर्कवंश की पृष्ठभूमि का समग्र अवलोकन कराती है।

अर्कवंश में जहाँ अनेक प्रतापी महाराजा हुये हैं, वहीं एक से एक दानी जैसे राजा हरिश्चंद्र, महारानी भीमादेवी व अन्य महापुरुष हुये हैं। इसी वंश में निम्बार्क नामक एक ऋषि हुये, जिन्होंने नैमिष तपस्थली में तपस्या की और मानवता एवं भाई-चारे का संदेश व आत्मज्ञान लोगों को दिया।

इतिहास का अभिप्राय महज तथ्यों के संग्रह से नहीं बल्कि सम्पूर्ण विचारधारा से है। जो लोग सशक्त हैं, जिनके पास कलम की ताकत है, वो उपलब्ध तथ्यों का निष्कर्ष अपने अनुरूप निकालकर ऐतिहासिक विचारधारा को अपने पक्ष में कर लेते हैं, जबकि निर्बल और अशिक्षित समाज अच्छे इतिहास के बावजूद उससे अनभिज्ञ रहता है। अर्कवंश में व्याप्त अशिक्षा और अज्ञान का लाभ उठाकर दूसरों ने अर्कवंशी क्षत्रियों के इतिहास पर अनाधिकृत अतिक्रमण करने के प्रयास किये हैं। अपने इतिहास की सुरक्षा हम तभी कर पायेंगे जब हमारे पास अनुकूल विचारधारा पैदा करने वाले विद्वान होंगे और ऐसा शिक्षा के प्रचार से ही सम्भव है। इस पुस्तक की रचना अर्कवंशी क्षत्रियों में ऐतिहासिक चेतना पैदा करने की दिशा में एक सराहनीय एवं महत्त्वपूर्ण कदम है।

अर्कवंश से संबंधित समस्त बिखरी हुयी जानकारियों को एक पुस्तक के रूप में लिपिबद्ध करने के लिये लेखक तथा संग्रह सहयोगी साधुवाद के पात्र हैं। उन्होंने अथक मेहनत व बौद्धिक बल से इस पुस्तक की रचना कर एक बहुत बड़ा सामाजिक कार्य किया है। इस उपकार के लिये अर्कवंशी क्षत्रिय समाज सदैव इनका गुणगान करेगा।

आशा है कि ये पुस्तक अर्कवंशी समाज की भावी पीढ़ियों के लिये एक दर्पण का कार्य करेगी तथा उनका उचित मार्गदर्शन करेगी।

Blsingh

(बी.एल. सिंह परिहार)

उदय सिंह पिण्डारी
सदस्य, प्रबन्ध कार्यकारिणी समिति,
भारतीय चारा एवं चारागाह
अनुसंधान परिषद।

जनपद उपाध्यक्ष
भाजपा
झांसी रोड, रामनगर,
उरई (जालौन)

संदेश

मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुयी है कि अर्कवंश की पृष्ठभूमि को प्रतिबिंबित करने के उद्देश्य से लिखी जाने वाली पुस्तक **'अर्कवंशी क्षत्रियों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि'** का सृजन कार्य इं.आर.ए. सिंह जी द्वारा पूर्ण कर लिया गया है। पुस्तक में अर्कवंश से जुड़े विभिन्न पहलुओं पर तथ्यात्मक दृष्टिपात किया गया है।

अर्कवंश एक वीर क्षत्रिय वंश रहा है तथा इसका इतिहास सूर्यवंश की गौरवशाली प्राचीन परम्पराओं का द्योतक है। इस वंश के अनेक कुलजों, जैसे-सम्राट प्रद्योत, महाराजा नंदिवर्धन, राजा बालार्क, राजा कनकसेन, राजा भट्ट अर्क, महाराजा तिलोकचंद, महान दानी महारानी भीमादेवी, राजा खड़गसेन, राजा सल्हीय सिंह, राजा मल्हीय सिंह, इत्यादि ने भारतीय इतिहास के निर्माण में बहुत बड़ा योगदान किया है, परन्तु अफसोस इस बात का है कि भारतीय इतिहास के रचयिताओं द्वारा अर्कवंश की महान आत्माओं को अपेक्षित स्थान नहीं दिया गया। यह पुस्तक भारतीय इतिहासकर्ताओं की इस भूल को सुधारने का एक सराहनीय प्रयास है।

इस पुस्तक में लेखक ने आदिकाल से वर्तमानकाल तक अर्कवंश के उत्थान एवं पतन से जुड़े तमाम पहलुओं पर विहंगम् दृष्टि डालते हुए इनकी तथ्यपूर्ण विवेचना की है। इसके साथ ही लेखक ने एक वर्ग-विशेष द्वारा सम्पूर्ण भारतीय समाज को तोड़ने के प्रयासों का विस्तृत उल्लेख किया है। पुस्तक में वर्ग-विशेष द्वारा, उनके स्वार्थपूर्ण कृत्यों में बाधक, मानवतावादी प्राचीन क्षत्रिय वंशों को विस्थापित कर नव-क्षत्रियों को स्थापित करने हेतु किए गये षड्यंत्रों की विचारोत्तेजक चर्चा की गयी है। लेखक ने भारतीय इतिहास के इस अनछुए पहलू का अत्यन्त गम्भीरता से विश्लेषण किया है।

पुस्तक में खांगरवंश के इतिहास को समुचित स्थान एवं आदर दिया गया है, जो कि बड़े ही हर्ष की बात है। खांगर एवं अर्कवंशी क्षत्रियों के सम्बन्ध एवं उनकी परम्पराएँ सदैव ही ऐतिहासिक रूप से आपस में जुड़ी रही हैं, तथा प्राचीनकाल से एक दूसरे की पोषक रही हैं। वर्तमान काल में विपरीत परिस्थितियों के चलते अर्कवंश और खांगरवंश के बीच सही सामंजस्य नहीं बन पाया है, परन्तु हमें इस भूल को सुधारते हुये अपने पूर्वजों की संयुक्त गौरवशाली परम्परा को न सिर्फ पुनः स्थापित करना होगा बल्कि उसे और भी आगे ले जाना होगा। आज आवश्यकता इस बात की है कि खांगर और अर्कवंशी क्षत्रिय एकजुट होकर कठिनाइयों का सामना करें तथा एक मंच पर आकर अपने अधिकारों के लिये संघर्ष करें।

आशा है कि यह पुस्तक खांगर और अर्कवंशी क्षत्रियों की एकता हेतु एक मजबूत आधार-स्तम्भ प्रदान करेगी।

उदय सिंह पिण्डारी

आमुख

इतिहास का ज्ञान किसी भी समाज के लिये अत्यन्त आवश्यक है। अपने पूर्वजों के इतिहास का ज्ञान मनुष्य को न सिर्फ उनके आदर्शों पर चलने की प्रेरणा देता है, बल्कि उनके द्वारा की गयी गल्तियों की जानकारी देकर उन्हें कभी न दोहराने की चेतावनी भी देता है। हर वंश को अपने पूर्वजों के इतिहास और उनकी परम्पराओं का ज्ञान होना चाहिये। जिन जातियों का इतिहास-बोध लुप्त हो जाता है, वे पतन की ओर अग्रसर हो जाती हैं।

दुर्भाग्यवश, भारतवर्ष में इतिहास लिखने की परम्परा कभी नहीं रही। इस पर दुःखद ये कि ताम्रपत्रों तथा प्राचीन बौद्ध-लेखों के रूप में सुरक्षित न जाने कितना प्रामाणिक इतिहास विदेशी आक्रमणकारियों द्वारा नष्ट कर दिया गया। इस प्रकार न जाने कितने गौरवशाली वंशों का इतिहास नष्ट हो गया। आज किसी भी भारतीय जाति अथवा वंश का इतिहास क्रमबद्ध तरीके से नहीं मिलता, जो कुछ भी थोड़ा-बहुत मिलता है वह इधर-उधर बिखरा पड़ा मिलता है।

भारत की अन्य जातियों एवं वंशों की तरह अर्कवंशी क्षत्रियों का इतिहास भी एक जगह एकत्र होने के बजाए तमाम लेखों, गज़ेटियरों, वंशावलियों तथा ग्रन्थों में बिखरा मिलता है। लेखक ने विभिन्न स्रोतों के अन्वेषण के पश्चात्, अनेक कड़ियों को जोड़कर एक श्रृंखला तैयार करने का प्रयास किया है। लेखक का विश्वास है कि भविष्य में होने वाली खोजों एवं शोधों से इस श्रृंखला को और वृहत किया जा सकेगा तथा किसी भी कमी को दूर किया जा सकेगा। कुछ लेखों एवं गज़ेटियरों की पंक्तियाँ मूलरूप में उद्धृत करके हिन्दी अनुवाद सहित पुस्तक में दी गयीं हैं।

अर्कवंशी क्षत्रिय बन्धुओं को उनके प्राचीन एवं गौरवशाली इतिहास का ज्ञान कराना तथा उनमें चेतना पैदा करना ही पुस्तक का मुख्य लक्ष्य है। आशा है कि पुस्तक अपने इस लक्ष्य में सफल होगी। सभी जागरुक अर्कवंशी क्षत्रिय बन्धुओं से अनुरोध है कि इस पुस्तक को एक दिग्दर्शिका के रूप में इस्तेमाल करें। इसकी भावना को जन-जन तक पहुँचायें तथा सोये हुये बन्धुओं को जागृत करने में अपना सहयोग दें। इस पुस्तक की रोशनी में ऐतिहासिक वास्तविकता एवं विचार-क्रान्ति से समाज के उज्ज्वल भविष्य के निर्माण में हम सब अपना योगदान दें, यही अपने पूर्वजों के प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

किस भांति जीना चाहिए, किस भांति मरना चाहिए,
सो हमें निज पूर्वजों से याद करना चाहिए।
जीते हुए भी मृतक-सम रहकर, न केवल दिन भरो,
वर वीर बनकर आप अपनी विघ्न बाधायें हरो।।

-लेखक

पुस्तक का उद्देश्य

पुस्तक का अध्ययन प्रारम्भ करने से पहले पुस्तक के उद्देश्य को समझना अत्यन्त आवश्यक है। इस पुस्तक का मुख्य उद्देश्य अर्कवंशी क्षत्रियों को उनके गौरवशाली इतिहास से परिचित कराकर उनमें स्वाभिमान और जागरुकता पैदा करना है।

बालक जब बड़ा होता है और उसमें दीन-दुनिया की समझ पैदा होती है, तो उसके मन में सबसे पहला प्रश्न यही उठता है कि वह कौन है और उसकी पहचान क्या है। जिनको अपनी पहचान से संबंधित उपयुक्त उत्तर मिल जाते हैं, वो स्वाभिमान एवं साहस के साथ जीवन-पथ पर आगे बढ़ते चले जाते हैं, परन्तु जिन्हें अपनी पहचान स्पष्ट नहीं हो पाती, वे हीन-भावना से ग्रसित होकर कुन्ठित एवं कमजोर व्यक्तित्व के स्वामी हो जाते हैं। अर्कवंशी समाज के लोग आज भ्रमित से दिखाई पड़ते हैं, क्योंकि अधिकतर अर्कवंशियों को आज भी अपनी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के बारे में स्पष्ट रूप से कुछ भी पता नहीं है। प्रामाणिक ऐतिहासिक जानकारी उपलब्ध कराकर अर्कवंशी समाज से जुड़ी हुई [illegible] गलतफहमियों को दूर करना एवं आधुनिक विचारधारा पैदा करना इस पुस्तक का एक मुख्य उद्देश्य है। यह पुस्तक इस बात को ध्यान में रखकर लिखी गयी है कि भावी पीढ़ियाँ इससे प्रेरणा प्राप्त करके, अपने तथा अपने समाज के उत्थान के लिये आवश्यक कदम उठायें।

उपरोक्त उद्देश्य की पूर्ति हेतु पुस्तक में अर्कवंश के उद्भव एवं पराभव से जुड़े तमाम घटनाक्रमों को प्रस्तुत किया गया है तथा उनके प्रभावों की विवेचना की गयी है। ऐतिहासिक तथ्यों एवं सन्दर्भों को, पूर्णतया तटस्थ रहते हुए सही-सही प्रस्तुत करने का प्रयास इस पुस्तक में किया गया है। इस प्रयास में हमें कई कटुसत्यों का भी उल्लेख करना पड़ा है। इन उल्लेखों का लक्ष्य किसी भी जाति अथवा धर्म के प्रति दुर्भावना पैदा करना कतई नहीं है।

पुस्तक में पुरोहित-वर्ग द्वारा अपनी प्रभुसत्ता को कायम रखने हेतु किये गये असामाजिक उपक्रमों का जिक्र किया गया है। यदि उन उल्लेखों को उनके सही परिप्रेक्ष्य में समझा जाए तो यह स्वतः ही स्पष्ट हो जायेगा कि हमारा उद्देश्य ब्राह्मण जाति के प्रति द्वेष पैदा करना नहीं, बल्कि देश व समाज को बाँटने वाले स्वार्थी तत्वों की निंदा करना है। अर्कवंशी क्षत्रियों का विरोध समाज को बाँटने की चेष्टा करने वाले प्रतिक्रियावादी पोंगा-पंडितों से रहा है। राष्ट्र एवं समाज के निर्माण में अपना अभूतपूर्व योगदान देने वाले, तथा समाज में व्याप्त पाखंड एवं पाखंडियों का पुरजोर विरोध करने वाले ब्राह्मण

महापुरुषों, जैसे-राजा राममोहन राय, स्वामी दयानंद सरस्वती, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, ईश्वरचन्द विद्यासागर, पं. जवाहरलाल नेहरू, पं. श्रीधर पंत बलवंत तिलक (डा. बी. आर. अम्बेडकर द्वारा स्थापित 'समाज समता संघ' की पूना शाखा के पूर्व उपाध्यक्ष), महर्षि कर्वे, आचार्य विनोबा भावे, परमपूज्य श्रीराम शर्मा आचार्य, इत्यादि के प्रति अर्कवंशी क्षत्रिय समाज अनन्य श्रद्धाभाव रखता है।

स्वच्छ सोच रखने वाले कई ब्राह्मण विद्वान समय-समय पर अर्कवंशी क्षत्रियों को प्रोत्साहित करते आये हैं तथा आजादी के बाद उनके सामाजिक सम्मेलनों में शामिल होते रहे हैं। उदाहरणतया, सन् 1954 में सण्डीला के पास हुये इसी तरह के एक अर्कवंशी क्षत्रिय सम्मेलन (जिसमें प्रा. अर्कवंशी क्षत्रिय महासभा के वर्तमान उपाध्यक्ष आदरणीय श्री गोकरन सिंह जी भी शामिल थे) में एक विद्वान ब्राह्मण वक्ता श्री भारत प्रसाद शुक्ल ने, अर्कवंश से संबंधित गलतफहमियों को दूर करने के उद्देश्य से, काफी ज़ोर देकर कहा था कि अर्कवंशी लोग सूर्यवंशी क्षत्रियों के वंशज हैं तथा इसे सिद्ध करने हेतु वे किसी से भी बहस करने को तैयार हैं।

सत्तालोलुप एवं पाखण्डी ब्राह्मणों ने अगर अर्कवंशियों के खिलाफ कई जगह षड्यंत्र रचे हैं तो राष्ट्रवादी विचारधारा से ओत-प्रोत, कुछ सिद्धान्तवादी ब्राह्मणों ने अर्कवंशियों का साथ भी दिया है। इसका एक उत्कृष्ट उदाहरण अर्कवंशी क्षत्रियों के प्राचीन राज्य साढ़-सलेमपुर के इतिहास से मिलता है। कन्नौज के कान्यकुब्ज ब्राह्मणों के वंशज जगन ने जब धोखे से अर्कवंशियों का राज्य साढ़-सलेमपुर हथिया लिया तो कान्यकुब्जों ने जगन के इस अनैतिक कार्य का भरपूर विरोध किया। चूँकि पूर्वकाल में अर्कवंशी क्षत्रियों ने अपने प्राणों की बाजी लगाकर, विदेशी आक्रमणकारियों से कन्नौज के कान्यकुब्जों की रक्षा की थी इसलिए कान्यकुब्ज ब्राह्मण अर्कवंशियों के अहसानमंद थे। इसी कृतज्ञता के कारण कान्यकुब्जों ने जगन के दुष्कृत्यों का विरोध करते हुये, उसे कान्यकुब्ज बिरादरी से बाहर कर दिया था। आज भी जगन के वंशजों (जो कि जगनवंशी ब्राह्मण कहलाते हैं) और कान्यकुब्ज ब्राह्मणों के बीच सामान्य बिरादराना संबन्ध नहीं हैं। प्रत्येक समाज में अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के लोग होते हैं। अतः सम्पूर्ण ब्राह्मण जाति के प्रति द्वेष रखने का कोई औचित्य नहीं है।

पुस्तक में स्थापित-विस्थापित (नव-प्राचीन) क्षत्रियों के सम्बन्ध में ऐतिहासिक वास्तविकता को दर्शाया गया है जो कि पुरोहित-वर्ग द्वारा अपनी स्वार्थ-सिद्धि हेतु अपनाये गए सफलतम् हथकंडों का एक उदाहरण मात्र है। वर्तमान में "अखिल भारतीय क्षत्रिय महासभा" द्वारा, राष्ट्रहित में स्थापित-विस्थापित क्षत्रियों को संगठित करके एक सूत्र में पिरोने के लिए किए जा रहे अनुकरणीय प्रयासों को सफल बनाना इस पुस्तक का एक उद्देश्य है।

इस पुस्तक में अर्कवंशी क्षत्रियों और तुर्कों के बीच हुये संघर्षों का जिक्र महज जानकारी उपलब्ध कराने के मकसद से किया गया है। मुसलमानों के प्रति दुर्भावना पैदा करना हमारा उद्देश्य नहीं है। पाठकों को यह भी ध्यान रहे कि मध्यकाल में जिन मुस्लिमों के साथ अर्कवंशी क्षत्रियों का संघर्ष हुआ था, वो सभी विदेशी थे। भारतवर्ष में आज जो मुसलमान हैं वो इसी देश की मिट्टी की संतान हैं। उनकी रगों में इसी धरा का हवा-पानी लहू बनकर दौड़ रहा है इसलिये वो हमारे अपने भाई हैं और उनके प्रति द्वेष रखना मूर्खता है।

आज का युग परिवर्तन का युग है। पुराने मापदण्ड आज छिन्न-भिन्न हो रहे हैं। इंसान के जीवन से जुड़ी हुयी हर छोटी से छोटी चीज के मायने बदल रहे हैं। वर्तमान परिस्थितियों को ध्यान में रखकर नये नियम बनाये जा रहे हैं। हमें भी समाज व राष्ट्र में होने वाले किसी भी परिवर्तन हेतु मानसिक रूप से तैयार रहना चाहिये, परन्तु किसी भी परिवर्तन को सही ढंग से आत्मसात करने से पहले हर समाज के पास अपनी एक पहचान होनी चाहिये। अर्कवंशी क्षत्रियों को उनकी खोई हुयी पहचान दिलाना ही इस पुस्तक का मूल उद्देश्य है।

आशा एवं विश्वास है कि यह पुस्तक अपने उद्देश्यों की पूर्ति में सफल होगी।

"पत्थर की छाती के आगे, तूफान स्वयं रुक जाते हैं।
अविचल विश्वासी के आगे, भगवान स्वयं झुक जाते हैं।।"

प्रस्तावना

भारतवर्ष का इतिहास अत्यन्त प्राचीन एवं गौरवमयी गाथाओं से परिपूर्ण है। इस सुफला धरती ने न जाने कितनी महान आत्माओं एवं उनकी वंश परम्पराओं को जन्म दिया है। यदि आज भारतवर्ष सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक क्षेत्रों में अपनी अलग पहचान रखता है, तो इसका सारा श्रेय उन महापुरुषों को जाना चाहिये जिन्होंने अपने-अपने काल में देश की अक्षुणता को कायम रखने के लिये अपना सर्वस्व कुर्बान कर दिया। आदिकाल से आधुनिक काल तक, अनेक झंझावातों को सहता हुआ भारतवर्ष आज भी एक राष्ट्र के रूप में विश्व-पटल पर विद्यमान है तो सिर्फ इसलिये कि इसका आधार अत्यन्त मजबूत है। अनेक गौरवशाली वंशों ने अपने लहू से इसकी नींव के पत्थर जोड़े हैं। इन वंशों में अर्कवंश का नाम भी शामिल है, जिसके कई वीरों ने बाहृय आक्रमणकारियों से लोहा लेते हुये अपने प्राणों को न्यौछावर कर दिया। समय के थपेड़ों के चलते अर्कवंश के इन तमाम वीरों के नाम इतिहास के पन्नों से तो धूमिल हो गये, परन्तु उनकी वंश परम्पराएँ आज भी जीवित हैं। इन वीरों में महाराजा तिलोकचन्द के वंशज संडीला निर्माता महाराजा सल्हीय सिंह, मलिहाबाद निर्माता महाराजा मल्हीय सिंह और खागा नगर (जिला फतेहपुर) के निर्माता महाराज खड़गसेन अर्कवंशी के नाम आज भी स्मरणीय हैं।

यह भारतवर्ष का दुर्भाग्य ही है कि अपने देश के लिये जान न्यौछावर करने वाले असंख्य वीरों के नाम इतिहास के पन्नों में या तो हैं ही नहीं, या फिर अत्यंत धूमिल हैं। इसका सारा दोष प्राचीन भारतीय मानसिकता को जाता है, जिसके चलते भारत में क्रमवार प्रामाणिक इतिहास लेखन को कभी महत्त्व ही नहीं दिया गया। प्राचीनकालीन भारत में जहाँ धर्म, कला, साहित्य, दर्शन आदि पर असंख्य पुस्तकें लिखी गयीं, वहीं प्रामाणिक इतिहास के नाम पर कुछ गिनी-चुनी कृतियाँ ही निर्मित हुयीं। बौद्ध एवं जैन धर्म के विद्वानों ने अवश्य ही इतिहास लेखन में अपना योगदान दिया, परन्तु उन कृतियों का बहुत बड़ा हिस्सा देशी एवं विदेशी धर्मोन्मादियों द्वारा नष्ट कर दिया गया। मुग़लों के आने से पूर्व, प्राचीन एवं मध्यकाल में, लिखे गये भारतीय ऐतिहासिक वर्णनों में जो प्रमुख कमियाँ देखने में आती हैं वो निम्नलिखित हैं-

- अधिकतर ऐतिहासिक कृतियाँ भाटों द्वारा लिपिबद्ध की गयीं हैं। भाट लेखकों ने अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न करने के लिये अपने वर्णनों में कई अतिशयोक्तिपूर्ण और मनगढ़ंत बातें लिखी हैं जिनसे घटनाओं की विश्वसनीयता संदेहास्पद हो जाती है।

- किसी भी प्राचीन लेखक ने ऐतिहासिक तथ्यों को एक निश्चित कालक्रमानुसार लिपिबद्ध नहीं किया है, तथा हर ग्रन्थ में अलग-अलग संवतों का प्रयोग किया गया है। इसके चलते प्राचीन भारतीय इतिहास में तिथियों का लेखा-जोखा सही नहीं मिलता है।
- विभिन्न ऐतिहासिक कृतियों में एक ही पात्र (राजा, रानी, इत्यादि) के अलग-अलग नाम मिलते हैं। इतना ही नहीं, एक ही नाम के कई पात्र भी मिलते हैं, उदाहरणतया, भारतीय इतिहास में कम से कम 14 विक्रमादित्यों का उल्लेख मिलता है।
- भारत में ऐतिहासिक घटनाओं और मिथकों को कुछ इस तरह से गूंथा गया है कि यह स्पष्ट ही नहीं हो पाता कि क्या वास्तविक है और क्या काल्पनिक।
- सभी प्राचीन ऐतिहासिक कृतियाँ किसी वर्ग विशेष को ध्यान में रखकर लिखी गयीं प्रतीत होती हैं, तथा पूर्वाग्रहों से युक्त हैं, जिससे उन्हें निष्पक्ष नहीं कहा जा सकता।

बौद्धकाल के बाद ब्राहृमण पुरोहितों द्वारा रचित इतिहास द्वेष-भावना एवं पाखंड से परिपूर्ण परिलक्षित होता है। उस काल में जिन क्षत्रियों का झुकाव बौद्धधर्म की ओर था, उनको तरह-तरह के हथकंडों से पतन की ओर ले जाने की भूमिकायें बनाई गयीं तथा प्रभुसत्ता की लड़ाई में सत्य को भी दरकिनार कर दिया गया। पूर्वजों में ऐतिहासिक चेतना की कमी की हानि भारतीयों को हर काल में उठानी पड़ी। इसी कमी के चलते ही विदेशियों ने भारतवर्ष को 'इतिहास विहीन' देश की संज्ञा दे डाली।

इन सबके अतिरिक्त भारतीय इतिहास में युद्धों और ऐतिहासिक दुर्घटनाओं तथा उनसे संबंधित पात्रों को जरूरत से ज्यादा महत्त्व दिया गया है, जबकि शांतिपूर्वक शासन करने वाले अनेक वंशों व उनके शासकों को इतिहास में अपेक्षित स्थान नहीं दिया गया। यह एक ऐतिहासिक विडम्बना ही है कि 175 वर्षों तक दिल्ली पर राज करने वाले अर्कवंश के शांति एवं समृद्धिपूर्ण सशक्त शासनकाल की अपेक्षा, महज 30-40 वर्षों के चौहानवंशी शासनकाल को इतिहास में अधिक महत्त्व मिला है। ऐसा सिर्फ इसलिये है क्योंकि चौहानकाल में कई बड़े युद्ध (जैसे तराइन युद्ध) हुए थे।

भारतीय इतिहास को एक क्रमबद्ध प्रारूप देने का श्रेय अंग्रेज़ विद्वानों एवं इतिहासकारों को जाता है। उन्हीं की प्रेरणा के चलते ही भारतीयों में भी अपना इतिहास जानने एवं लिखने की उत्सुकता पैदा हुयी। लेकिन अंग्रेज़ों द्वारा लिखित इतिहास को भी पूर्णतया त्रुटिहीन नहीं कहा जा सकता। कुछ अंग्रेज़ लेखकों ने भारतीय परिस्थितियों के प्रति संवेदनहीनता का परिचय देते हुये कई ऐसी बातें लिख दी हैं जिनसे नये भ्रम पैदा हो जाते

हैं। उदाहरणतया-अंग्रेज़ इतिहासकारों ने आर्यों एवं द्रविणों को दो विभिन्न जातियाँ माना है, जबकि वास्तविकता ये है कि दोनों वर्ग 'काक्सॉइड' (Caucasoid) नामक मूल जातीय-समूह से उत्पन्न हुये हैं। आधुनिक भारतीय इतिहासकार आर्यों एवं द्रविणों के भेद को भाषाजनित मानते हैं। भारतीय इतिहसकारों के अनुसार जो जातियाँ उत्तर भारतीय भाषाओं, जैसे हिन्दी (संस्कृत व खड़ी बोली, अपभ्रंश), पंजाबी, कश्मीरी आदि का इस्तेमाल करती थीं वे 'आर्य' कहलायीं और जो जातियाँ दक्षिण भारतीय भाषाओं, जैसे तमिल, तेलुगू, कन्नड, मलयालम, इत्यादि का इस्तेमाल करती थीं वे 'द्रविण'।

अंग्रेज़ों द्वारा लिखित वर्णनों को पढ़कर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अंग्रेज़ भारत के विषय में सबकुछ जानने की इच्छा रखते थे। इसी उत्सुकता में उन्होंने ऐतिहासिक घटनाक्रमों का प्रामाणिक प्रस्तुतीकरण करने का प्रयास किया है। यही नहीं, उन्होंने भारतीय समाज की गुत्थियों को सुलझाने की भी कोशिश की है, लेकिन इस प्रयास में वे स्वयं उलझते प्रतीत होते हैं। उनकी ये उलझन भारतीय जातियों की उत्पत्ति से संबंधित लेखों में अधिक दिखाई पड़ती है। कई भारतीय जातियों की उत्पत्ति के विषय में अंग्रेज़ लेखकों ने विरोधाभासी एवं भ्रमपूर्ण बातें लिखी हैं।

जिन भारतीय जातियों की उत्पत्ति के विषय में कोई भी स्पष्ट प्रमाण नहीं मिले, उन्हें अंग्रेज़ों ने सम्भावनाओं के आधार पर आदिम जातियों से जोड़ दिया है। अंग्रेजों ने कई राजपूत जातियों, जैसे मझौली के बिसेन, बैसवाड़ा के बैस, अवध के गर्गवंशी, रैकवारों, राजकुमारों इत्यादि को भरों से उत्पन्न बताया है।

संयुक्त प्रान्त (आगरा व अवध) फैजाबाद गजेटियर पृ. 148 पर लिखता है-

"... Many of the modern Rajput clans of eastern Oudh are none other than the descendants of Bhar themselves"

अनुवाद-पूर्वी अवध की अधिकतर नव राजपूत जातियाँ भरों से ही उत्पन्न हुयी हैं।

प्राचीन क्षत्रिय जातियों के विषय में ऐसे भ्रम अधिक मिलते हैं; उदाहरणतया, कहीं पर चन्देलों को 'गोंड' जाति से उत्पन्न बताया गया है, कहीं पर राष्ट्रकूटों और राठौरों को भीलों की संतान बताया गया है, तो कहीं बघेलों (वाघेला) की उत्पत्ति बहेलिया (व्याध) जाति से बतायी गयी है।

प्राचीन क्षत्रिय वंशों के इतिहास लोप के कारण ही अंग्रेज़ों ने अपने लेखों में भ्रामक बातें लिखी हैं। क्षत्रियों के अलावा बिखरे इतिहास वाली कई जातियों, जैसे-अहीर, लोधी, कलवार, गूजर, बरई, काछी, इत्यादि को भी अंग्रेज़ों ने आदिम जातियों से उत्पन्न बताया है। इसके अलावा अंग्रेज़ लेखकों ने कुर्मी जाति को भारतवर्ष की 'असली शूद्र' जाति बताया है। यदि विस्तृत दृष्टिकोण से देखा जाये तो सभी भारतीय जातियों के तार कहीं न कहीं

सचमुच ही आपस में जुड़े हुये हैं क्योंकि सभी एक ही मूलपुरुष से उत्पन्न हुये हैं, परन्तु समय के साथ जैसे-जैसे प्रत्येक जाति की एक स्वतंत्र पहचान स्थापित होती चली गयी वैसे ही जातियों को जोड़ने वाले तार भी उलझते चले गये। वर्तमान में ये तार इतनी जटिलता से उलझे हुये हैं कि आज कोई भी भारतीय जाति पूर्ण विश्वास से अपनी उत्पत्ति के विषय में कुछ नहीं बता सकती। अंग्रेज़ों ने इन तारों को सुलझाने का प्रयास तो अवश्य किया, परन्तु उनके ये प्रयास प्रमाणों पर कम तथा संभावनाओं पर अधिक आधारित थे, अतएव वे इन तारों को और अधिक उलझा कर चले गये। अतः भारतीय जातियों की उत्पत्ति से संबंधित अंग्रेज़ी विचारों को पूर्णतया सत्य नहीं माना जा सकता। परन्तु हम अंग्रेज़ों को अधिक दोषी नहीं टहरा सकते क्योंकि वो सब तो विदेशी थे तथा भारतीय समाज के विषय में उनका ज्ञान सीमित था। जब हमारे अपने ही पूर्वजों ने वास्तविक एवं प्रामाणिक इतिहास लेखन को कभी कोई महत्त्व नहीं दिया तो विदेशियों से अधिक अपेक्षा रखना उचित नहीं।

अर्कवंशी क्षत्रियों से संबंधित जितने भी ब्रिटिशकालीन उल्लेख मिलते हैं उनमें अर्कवंशियों को 'अरख' नाम से संबोधित किया गया है। यहाँ पर यह बात ध्यान रखने योग्य है कि जिस समय ये अंग्रेज़ी लेख लिखे गये उस समय तक अर्कवंशी क्षत्रियों को सत्ताच्युत हुये सैकड़ों वर्ष बीत चुके थे, तथा गरीबी एवं अशिक्षा के कारण वे अत्यधिक कमज़ोर हो चुके थे। इतना ही नहीं, अज्ञानता के कारण उनका अपना इतिहास-बोध भी लुप्त हो चुका था। अतएव, अंग्रेज़ों ने दूसरी जातियों के बयानों के आधार पर जो कुछ सुविधाजनक लगा उनके बारे में वह लिख दिया। परन्तु सत्य को लाख आवरणों में भी छिपाया नहीं जा सकता। सभी उपलब्ध उल्लेख एक मत से यह सिद्ध करते हैं कि अर्कवंश एक प्राचीन वीर क्षत्रिय वंश रहा है। इसके कुलजों ने अनेक राज्यों की स्थापना की और कई नगरों को बसाया। कहीं भी यह लिखा नहीं मिलता कि इस जाति ने दूसरों से डरकर अपने अधिकार छोड़ दिये। सभी उल्लेख यही संकेत देते हैं कि अपनी मातृभूमि के लिये इन्होंने हँसते-हँसते अपने प्राणों की आहुति दे दी। इनके किसी भी राज्य पर, चाहे वो सण्डीला हो, मलिहाबाद हो, अयाह हो, पडरी हो, साढ़-सलेमपुर हो या खागा, बाहरी लोग तभी कब्जा कर पाये जब अर्कवंशियों के लहू से पूरी धरती नहा गयी। अधिकतर अर्कवंशी शासक धोखे एवं गद्दारी की वजह से ही पराजित हुये। ये सभी बातें अनेक ग्रन्थों एवं लेखों में बिखरी पड़ी हैं। जब कई छोटी-छोटी कड़ियों को जोड़कर एक विस्तृत रूप दिया जाता है तब यह स्वयं सिद्ध हो जाता है कि अर्कवंश सदैव ही वीर एवं स्वाभिमानी व्यक्तित्वों से परिपूर्ण रहा है, तथा इनके क्षत्रियत्व में कभी कोई कमी नहीं रही।

भारत में ऐतिहासिक चेतना का सदैव से ही अभाव रहा है, इसलिये यहाँ इतिहास संकलित करना आसान कार्य नहीं है। अर्कवंश के इतिहास संकलन में भी अनेक

कठिनाइयाँ सामने आयी हैं। ऐसा सम्भव है कि इस वीर वंश से संबंधित कुछ पहलू अनछुये रह गये हों। भविष्य में होने वाले शोधों से अतीत के गर्भ में छिपे अनछुये पहलुओं का भी खुलासा हो सकेगा। सभी बुद्धिजीवी भाइयों से अनुरोध है कि वे भी अपने-अपने स्तर पर खोज जारी रखते हुये अपने अनुभवों से अवगत कराते रहें। सभी अर्कवंशी क्षत्रिय भाइयों को यह ज्ञात होना चाहिये कि इतिहास उसी का सशक्त होता है जिसके पास कलम की शक्ति होती है। अर्कवंशियों को अपने समाज के महापुरुषों के नाम पर पड़ी धूल स्वयं हटानी होगी। उन्हें अपने महापुरुषों की ऐतिहासिक धरोहरों को सही ढ़ंग से संजोने का प्रयास करना होगा और अपने वीर पूर्वजों की गाथाओं को जन-जन तक पहुँचाना होगा।

"है समय नदी की बाढ़, कि जिसमें सब बह जाया करते हैं,
है समय बड़ा तूफान प्रबल, पर्वत झुक जाया करते हैं।
अक्सर दुनिया के लोग समय पर चक्कर खाया करते हैं,
लेकिन कुछ ऐसे होते हैं, इतिहास बनाया करते हैं।।"

अर्कवंश का उद्भव

अर्कवंश भारतीय मूल का एक प्राचीन क्षत्रिय वंश है। चूँकि प्राचीन भारत में इतिहास लेखन की परम्परा ही नहीं थी, अत: अन्य क्षत्रिय वंशों की तरह ही अर्कवंशी क्षत्रियों की उत्पत्ति से सम्बन्धित विभिन्न स्रोतों से अलग-अलग मत एवं उल्लेख प्राप्त होते हैं। इन विभिन्न मतों से सिद्ध होता है कि अर्कवंश सिर्फ एक शाखा नहीं बल्कि सूर्यवंश का पर्यायवाची शब्द है, जो कि प्राचीनकाल से ही सूर्यवंशी क्षत्रियों द्वारा प्रयुक्त किया जाता रहा है। अलग-अलग कालों में सूर्यवंश के अन्तर्गत कई 'अर्क' नामधारी राजा हुए। कालान्तर में इन 'अर्क' राजाओं की वंश परम्पराएँ (पीढ़ियाँ) सूर्यवंश की समानान्तर शाखाओं के रूप में स्थापित हो गयीं तथा इनके वंशधर अर्कवंशी क्षत्रिय कहलाए। अर्कवंशी क्षत्रिय सूर्य को अपना कुलदेवता मानते थे तथा सूर्य के उपासक थे।

पौराणिक उल्लेख

पौराणिक ग्रन्थों के अनुसार राजा कश्यप के पुत्र सूर्य थे, तथा सूर्य के पुत्रों में दूसरे पुत्र अर्यमा तथा सातवें पुत्र वैवस्तु मनु थे। मनु के पुत्रों में इक्ष्वाकु ने अयोध्या, नाभारिष्ट ने विशाला, कारुष ने दक्षिण बिहार, ध्रष्ट ने पांचाल, नाभाग ने यमुना के दक्षिण भाग, शयार्ति ने आनर्त (उत्तर गुजरात) और निधि ने विदेह (पूर्वोत्तर बिहार) में अपना राज्य स्थापित किया, जबकि नरिष्यन्ति मध्य एशिया में जाकर बस गये। कालान्तर में नरिष्यन्ति के वंशज इस्लाम धर्म के प्रादुर्भाव के बाद इस्लाम धर्मी हो गये।

राजा कश्यप के पुत्र सूर्य से 'सूर्यवंश', अत्रिपुत्र चन्द्र से 'चन्द्रवंश' और सूर्य के पुत्र अर्यमा से 'आर्यवंश' की स्थापना हुई। इन तीनों राजवंशों के वंशज, कालान्तर में, आर्य संस्कृति को अपनाने के कारण 'आर्य' कहलाये और भारत भूमि पर इनकी कर्मभूमि 'आर्यवर्त' के नाम से प्रसिद्ध हुई।

'ऋग्वेद', 'महावंश टीका' एवं 'आर्यमंजूश्रीमूलकल्प' के अनुसार ओक्काक वंशी (इक्ष्वाकु वंशी) आर्य हिमवर्ष (भारतवर्ष) में सर्वप्रथम सप्तसिन्धु क्षेत्र में आकर बसे। पुराणों के अनुसार विशाल आर्य जाति की एक शाखा बहुरमज्ज (असुर पराक्रमी) की उपासक हो गयी थी। आसुरी शक्ति के उपासक और वैदिक आर्य-संस्कृति के अनुपालकों में निरन्तर संघर्ष होता रहता था। वैदिक साहित्य में इन्हीं युद्धों को देवासुर संग्राम की संज्ञा दी गयी है।

[illegible] करने के लिये अनेक राजाओं, जो कि वैदिक धर्म के मानने वाले एवं आर्य संस्कृति के पोषक थे, ने मिलकर आर्यमण्डल की स्थापना करके असुरों से संग्राम किया। परिणामस्वरूप असुर पराजित होकर प्राण रक्षार्थ ईरान, अक्काद, सुमेरिया और असीरिया आदि स्थानों में जाकर बस गये। इसी आर्यमण्डल को 'अर्कमण्डल' के नाम से भी पुकारा गया। कालान्तर में सूर्यवंशी राजाओं ने कई बार 'अर्कमण्डल' नामक क्षत्रिय-संघ की स्थापना की।

विभिन्न कालों में आर्य क्षत्रियों के वंशजों ने अपने-अपने मूलपुरुषों के नामों पर कई वंशों, शाखाओं एवं प्रशाखाओं को प्रतिष्ठापित किया। सूर्यपुत्र अर्यमा के ज्येष्ठ पुत्र आर्यक के वंशधर आर्य क्षत्रिय, सूर्यवंशी क्षत्रिय और अर्क क्षत्रिय नाम से विख्यात हुये। सूर्यवंश के अन्तर्गत भिन्न-भिन्न कालों में अनेक 'अर्क' नामधारी प्रतापी राजा हुये। 'अर्क' शब्द व्यक्ति सूचक न रहकर वंश परम्परा का परिचायक बना।

निम्बार्क- पुराणों के अनुसार प्राचीनकाल में सूर्यवंश में 'अर्क' नामधारी ऋषि निम्बार्क हुये हैं, जिन्होंने अपने ज्ञान एवं तप के बल पर दूर-दूर तक ख्याति प्राप्त की। ऋषि बनने से पूर्व, निम्बार्क कोशल देश के सूर्यवंशी राजा थे। सूर्यवंश की प्राचीन परम्परा के अनुसार, एक निश्चित आयु के पश्चात्, राजा अपना राजपाट अपने उत्तराधिकारी को सौंपकर, वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करता था। इसी परम्परा का पालन करते हुये, सम्राट निम्बार्क राजपाट त्याग कर, नैमिषारण्य के घने जंगलों में चले गये तथा वर्षों तक वहाँ तप किया। त्याग एवं तप से सिद्धि प्राप्त करने के बाद उन्होंने समाज को दिशा देने में अपना योगदान दिया।

निम्बार्क ऋषि ने संतों एवं ऋषियों को संरक्षण देने के उद्देश्य से कई तीर्थ-स्थानों पर आश्रमों की स्थापना की थी। इसका एक उदाहरण है प्रयाग का 'निम्बार्क' आश्रम। यह स्थान आज भी इसी नाम से जाना जाता है। सीतापुर व नैमिषारण्य के आसपास रहने वाले अर्कवंशी क्षत्रिय निम्बार्क ऋषि के ही वंशज बताये जाते हैं। कुछ उल्लेखों के अनुसार 'नैमिषारण्य' वस्तुतः 'निमिषारण्य' का अपभ्रंश है, जो कि निम्बार्क ऋषि की तपस्थली होने के कारण इस नाम से जाना गया। चिन्मयानंद जी ने कई पुस्तकों में निम्बार्क ऋषि के महातम्य का उल्लेख किया है।

जैन उल्लेख

जैन ग्रन्थ 'जैन हरिवंश' के अनुसार महाराजा प्रियव्रत के पुत्र अग्निधर जो जम्बूद्वीप (भारतवर्ष) के सम्राट थे, उनसे नाभि और नाभि से ऋषभदेव हुये। ऋषभदेव के भरत नामक पुत्र हुआ। इन्हीं चक्रवर्ती भरत के नाम से ही 'भारतवर्ष' नाम पड़ा।

मध्य भारत के इन्दौर नगर से 150 मील दूर जैनियों का सिद्ध क्षेत्र स्थित है जो कि 'बावन गजा' नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ भगवान ऋषभदेव की 52 हाथ ऊँची मूर्ति स्थापित

है, जो कि एक ही पत्थर पर उत्कीर्ण है। जैन ग्रन्थ "शासन-चतुस्त्रि-शिका" के अनुसार इसके निर्माता सूर्यवंशी राजा अर्ककीर्ति हैं। अर्ककीर्ति के वंशज राजा मदनकीर्ति ने 12वीं शताब्दी में इसका पुनः जीर्णोद्धार कराया।

बौद्ध उल्लेख

बौद्ध ग्रन्थ 'महावास्तु' तथा 'सुमंगल विलासिनी' के अनुसार 'आदित्य बन्धु' या 'अर्कबन्धु' शाक्यवंशी लोग हैं। 'आदित्य' और 'अर्क' सूर्य के पर्यायवाची हैं। पौराणिक ग्रन्थों के अनुसार भी शाक्यवंश के लोग सूर्यवंशी क्षत्रिय थे। इनकी राजधानी कपिलवस्तु थी। कपिलवस्तु को ही अर्कों के पूर्वजों की जन्मभूमि बताया गया है। कपिलवस्तु सूर्यवंशी राज्य कोशल का हिस्सा थी तथा यहाँ पर सूर्य-शाक्यवंश का गणराज्य था। शाक्यवंश में महाराजा शाक्य तथा सिद्धार्थ हुये, जो कि बाद में दिव्य-ज्ञान प्राप्त करके 'गौतम बुद्ध' कहलाये। गौतमबुद्ध का एक नाम 'अर्कबन्धु' भी है, इसी कारण उनके अनेक कुलज 'अर्क' नाम-धारी हुए। अमरकोश के पृ. सं. 4 पर लिखा है-

"स शाक्यसिंहः सर्वार्थः सिद्धः शौद्धोदनिश्च सः।
गौतमश्चार्क बन्धुश्च मायादेवीसुतश्च सः।।"

अनुवादः-'शाक्यमुनि, शाक्यसिंह, सर्वार्थसिद्ध, शौद्धोदनि, गौतम, अर्कबन्धु और मायादेवीसुत, ये सात नाम बौद्धमत के प्रचारक भगवान बुद्ध (शाक्यमुनि) के हैं।'

अर्क जातक- महात्मा बुद्ध के पूर्व जन्मों की कहानियां जातक कथाओं के नाम से जानी जाती हैं। कथा संख्या 169 को 'अर्क जातक' कहा जाता है। इसके अनुसार तेजस्वी एवं ज्ञान से परिपूर्ण गौतमबुद्ध को 'अर्क' भी कहा गया है। कालान्तर में उनके अनेक वंशजों ने 'अर्क' नाम धारण किया।

शाक्यवंशी अपने कुल-गौरव को अक्षुण रखने के निमित्त, रक्त मिश्रण के भय से समगोत्रीय विवाह सम्बन्ध कायम करते थे, जिसे 'गुरावट' प्रथा के नाम से जाना जाता था। इस प्रकार की प्रथा वर्तमान में अर्कवंशी क्षत्रियों के अलावा विभिन्न अगड़ी तथा पिछड़ी जातियों में प्रचलित है। शाक्यवंशी इस प्रथा का बहुत ही कठोरतापूर्वक पालन करते थे; उदाहरणस्वरूप, कोशलनरेश प्रसेनजीत, जिसकी राजधानी काशी में थी, का विवाह प्रस्ताव आने पर शाक्य राजा ने अपनी पुत्री न देकर एक दासी कन्या का विवाह उससे करवा दिया था, जिससे विरूद्धक नामक पुत्र का जन्म हुआ। जब विरूद्धक को अपने जन्म की सत्यता का पता चला तब उसने शाक्यवंशी क्षत्रियों का भीषण नरसंहार किया।

ऐतिहासिक उल्लेख

'अर्क शिरोमणि' राम के पुत्र कुश के वंशजों ने कोशल के पूर्वी क्षेत्र में कुशावती राज्य

स्थापित किया, जिसे अब 'कसिया' कहा जाता है। कुश के वंशजों की एक शाखा का राज्य शाकवन नामक स्थान में होने के कारण यह शाखा 'शाक्य' के नाम से प्रसिद्ध हुयी। कुछ लेखों के अनुसार कुश के वंशजों में एक शाक्य या सतसुक्य नामक राजा हुये, जिनके नाम से शाक्यवंश चला।

कुछ ऐतिहासिक लेखों में यह भी विवरण मिलता है कि रामचन्द्र के भाई भरत के पुत्र तक्षक का राज्य तक्षशिला में था, जो कि अब पाकिस्तान में है। शाक्यवंशियों में बहुत से क्षत्रिय तक्षशिला नामक राज्य के प्रमुख सामन्त, राजा और निवासी थे। सूर्योपासक महाराजा तक्षक के वंशज अपने को 'तक्षकवंशी' कहते थे। ई.पू. नवीं शताब्दी* में महाराजा तक्षक के वंशजों में एक प्रतापी राजा हुआ, जिसका नाम प्रद्योत था। प्रद्योत का पिता सुनक, मगध के चन्द्रवंशी राजा रिपुन्जय के यहाँ मंत्री था। रिपुन्जय, सम्राट जयद्रथ की तेइसवीं पीढ़ी का राजा था और बहुत आततायी एवं दुराचारी था। उसकी प्रजा उसके दुष्कार्यों से अत्यन्त भयभीत और त्रस्त थी। अत्याचारी राजा रिपुन्जय को मारकर सुनक ने मगध राज्य पर अपना अधिकार कर लिया। वृद्ध होने के कारण सुनक ने स्वयं राजा न बनकर अपने पुत्र प्रद्योत को मगध राज्य पर सत्तासीन किया।

राजा प्रद्योत की तीन संतानों में प्रथम पुत्र पालक, दूसरा गोपाल और तीसरी सन्तान वासवदत्ता नामक पुत्री थी। प्रद्योत ने 23 वर्षों तक शासन किया और अवन्ती तक अपना राज्य विस्तार कर लिया। उनके बाद उनके पुत्र पालक ने 24 वर्षों तक राज्य किया। प्रद्योत के दूसरे पुत्र गोपाल से आर्यक अथवा अर्क नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिन्हें पौराणिक ग्रन्थों में सूर्यक एवं अजक भी कहा गया है। आर्यक (अर्क) के पुत्र नन्दिवर्धन थे, जिन्होंने अपने पिता के नाम से 'अर्कवंश' की स्थापना की। इस शाखा के क्षत्रिय 'अर्कवंशी' कहलाये। नन्दिवर्धन (जिन्हें अवन्तिवर्धन भी कहा गया है) का एक पुत्र शिशुनाग हुआ जिसने 'नागवंश' की स्थापना की। शिशुनाग के वंशजों से कालान्तर में बैस क्षत्रियों की एक शाखा का भी जन्म हुआ।

नन्दिवर्धन की दूसरी पत्नी से बालार्क नामक पुत्र हुआ, जिसने उत्तर भारत के उत्तरी क्षेत्र ब्रम्हाइच (वर्तमान में बहराइच) में जाकर अर्कवंशी राज्य स्थापित किया। राजा बालार्क सूर्य के उपासक थे तथा उनके वंशज (राजा तिलोकचन्द) ने कालान्तर में यहीं पर एक सूर्य मंदिर की स्थापना की, जो कि 'बालार्क' सूर्य मंदिर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। राजा बालार्क के वंशज अर्कवंशी क्षत्रिय सैकड़ों वर्षों तक अपने पूर्वज के नाम पर 'बालार्क' उपाधि धारण किए रहे।

*कुछ ऐतिहासिक स्रोतों में प्रद्योत का शासनकाल सातवीं शताब्दी ई.पू. तथा कुछ में ई.पू. छठीं शताब्दी भी दर्शाया गया है। प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में भिन्न-भिन्न संवतों का प्रयोग होने के कारण ऐतिहासिक तिथियों में बहुत घालमेल मिलता है। अनेक प्राचीन राजाओं (जैसे-प्रद्योत, कनिष्क, इत्यादि) के शासनकाल की तिथियों को लेकर विद्वानों में अभी भी मतभेद हैं।

आहड़िया क्षत्रिय- कुछ ऐतिहासिक और उल्लेखों (राशिमाला-1 इत्यादि) के अनुसार दूसरी शताब्दी में इक्ष्वाकुवंश कुलज अर्क शिरोमणि राम के पुत्र लव के वंशधर राजा कनकसेन ने कोशल राज्य से निकलकर सौराष्ट्र (सूर्यराष्ट्र) में सूर्यवंशी राज्य स्थापित किया। कालान्तर में राजा कनकसेन के वंशज विजयसेन (विजयभूषण) ने दक्षिण भाग की विराट भूमि पर मीणा और भीलों को हराकर विजयपुर (विराटगढ़) नामक नगर की स्थापना की। ये वही विराट भूमि थी जहाँ पर प्राचीनकाल में पाण्डवों ने अपना वनवास काल व्यतीत किया था। राजा विजयसेन के वंशजों ने विदर्भ में वल्लभी राज्य स्थापित किया और वल्लभीपति कहलाये। वल्लभ संवत् का प्रारम्भ भी उन्हीं के द्वारा किया गया था। इनकी एक उपाधि 'बालार्क' भी थी। इस उपाधि को उनके वंशज सैकड़ों वर्षों तक धारण किये रहे तथा कालान्तर में 'अर्क' नाम से जाने गये। छठवीं शताब्दी में पार्थियनों के आक्रमण में इस वंश का अन्तिम राजा शिलादित्य मारा गया तथा वल्लभी राज्य पूर्णतया नष्ट हो गया और उनका कुटुम्ब इधर-उधर बिखर गया। इसी वंश के कुछ वंशधर कान्यकुब्ज राज्य जा पहुँचे, जबकि शिलादित्य के पुत्र गुहादित्य अपने बचे-खुचे परिवार के साथ राजस्थान के आहड़ प्रदेश (मेवाड़) में जा बसे। सैन्य शक्ति एकत्र करने के बाद उन्होंने चित्तौड़ के राजा को युद्ध में हराकर वहाँ सूर्यवंशी राज्य स्थापित किया। अर्कवंश की इस शाखा ने कई वर्षों तक चित्तौड़ पर राज्य किया।** गुहादित्य के वंशजों ने चित्तौड़ के पूर्व में स्थित (खैराबाद के निकट) झालरापाटन नगर (देखें नक्शा) में एक भव्य सूर्य मन्दिर का निर्माण करवाया था, जो आज भी वहाँ के सूर्य उपासक अर्कवंशी क्षत्रियों के गौरवमयी इतिहास की कहानी सुना रहा है। कालान्तर में गुहादित्य की संतति स्थान-जन्य नाम को अपनाने के कारण 'आहड़िया' भी कहलायी। राजस्थान में निवास करने वाले अर्कवंशी क्षत्रिय आज भी 'आहड़िया' के नाम से जाने जाते हैं।

झालरापाटन में स्थित प्राचीन सूर्य मंदिर

भट्ट अर्क- अर्कवंशी राजा आर्यक के अनेक वंशधरों में एक वीर राजा भट्ट अर्क हुए

** उपरोक्त तथ्य की पुष्टि 'जाति व कौम' (Tribes and Castes) नामक ग्रन्थ से भी होती है। ग्रन्थ के पृ. 99 पर लेखक श्री शेरिंग लिखते हैं- "The Arakhs of Khairabad state that their ancestors formerly ruled in Chittor..." अर्थात्-खैराबाद के अर्कवंशी कहते हैं कि उनके पूर्वजों ने पूर्व काल में चित्तौड़ पर राज किया था।

हैं। उन्होंने गुजरात (सौराष्ट्र) में पुनः अर्कवंशी राज्य की स्थापना की। कुछ इतिहासकारों ने उन्हें मैत्रकवंशी बताया है, पर वास्तव में वह अर्कमण्डल में सम्मिलित अर्कवंशी क्षत्रिय थे, जिन्हें उक्त संघ के अन्य क्षत्रिय 'मित्रवंशी' (अर्थात 'सूर्यवंशी') कहकर पुकारते थे। 'मित्रवंश' को ही सम्भवतः इतिहासकारों ने 'मैत्रक' नाम दे दिया है। राजा भट्टट सूर्य के उपासक थे तथा उनके शासनकाल में वहाँ सूर्य पूजा का अत्यधिक प्रचार-प्रसार हुआ। गुजरात के कई हिस्सों में अभी भी प्राचीन सूर्य मंदिर पाए जाते हैं। भट्टार्क के एक उत्तराधिकारी राजा ने पूर्वी पंजाब में अपने पितामह के नाम पर 'भट्टनगर' की स्थापना की, जो अब 'भटिण्डा' के नाम से जाना जाता है।

सम्राट हर्षवर्धन- बाणभट्ट कृत 'हर्षचरित' तथा हर्षवर्धन द्वारा हस्तलिखित रचनाओं (रत्नावली इत्यादि) के अनुसार सातवीं शताब्दी के प्रारम्भ (606-647 ई.) में उत्तर-भारत (कन्नौज, दोआबा प्रान्त, इत्यादि) पर राज करने वाले सम्राट हर्षवर्धन का जन्म सूर्य उपासकों की जाति में हुआ था। 'हर्षचरित' के अनुसार सम्राट हर्षवर्धन सूर्यवंशी राजा पुष्यभूति के वंशज थे, जिनकी राजधानी थानेश्वर में थी। हर्षवर्धन के पूर्वज सूर्य के उपासक थे तथा पाखण्डों एवं आडम्बरों के विरोधी थे। अपने पूर्वजों की भांति सूर्योपासक होने के साथ ही हर्षवर्धन रुद्रशिव के भी उपासक थे और पूर्वजों के समान ही वे भी ब्राह्मण-धर्म के आडम्बरों के विरोधी थे। इसी विरोध के चलते हर्षवर्धन ने राजा बनने के कुछ वर्षों बाद अपनी बड़ी बहन राजश्री के समान बौद्धधर्म अपना लिया था तथा उसका प्रचार-प्रसार करना प्रारम्भ कर दिया था। श्री वी.के. भण्डारी और श्री एस.एल. केली द्वारा लिखित पुस्तक 'इण्डियन हिस्ट्री एण्ड कल्चर' (सन् 1987 संस्करण) के पृ. 124 के अनुसार-

"Harsha was at first a worshipper of Shiva and the Sun, but in latter part of his life he became more and more inclined towards Buddhism."

अनुवाद-हर्ष प्रारम्भ में शिव और सूर्य के उपासक थे, किन्तु बाद के जीवनकाल में उनका झुकाव बौद्धधर्म की ओर बढ़ता चला गया।

सम्राट हर्षवर्धन एक प्रजाप्रेमी और उदार राजा थे तथा सदैव अपनी प्रजा की भलाई के विषय में चिंतित रहते थे। इसके अलावा वे बहुत धर्मात्मा और दानी पुरुष थे। अपने राज्य में होने वाले आयोजनों के दौरान वे अपने पास मौजूद सभी वस्तुएं, यहाँ तक कि अपने वस्त्र भी गरीबों और ज़रूरतमंदों को दान कर दिया करते थे। दान की यह प्रवृत्ति उन्होंने अपने सूर्यवंशी पूर्वजों से ही पायी थी। चीनी यात्री व्हेनसांग हर्षवर्धन के शासनकाल में ही भारत आया था। उसने लिखा है कि सम्राट हर्षवर्धन अपना सारा समय और ऊर्जा अपनी प्रजा और राज्य की भलाई में ही ख़र्च करते थे। व्हेनसांग ने अपने संस्मरणों में अर्कवंशी राज्य अर्कौना का भी उल्लेख किया है।

इतिहासकारों ने हर्षवर्धन को 'वर्धनवंशी' बताकर छुट्टी कर ली है, जबकि 'वर्धन'

कोई जाति नहीं महज एक उपनाम है जिसका प्रयोग पहले भी अर्कवंश के पूर्वज सम्राट नन्दिवर्धन ने किया था।

अन्य ऐतिहासिक संदर्भ

अर्कवंश का बहुत सारा इतिहास ऐतिहासिक पुस्तकों में बिखरा पड़ा है, जिसकी खोज जारी रहना आवश्यक है। मौजूदा उपलब्ध ग्रन्थों में अर्कवंशी क्षत्रियों से सम्बंधित उल्लेखों के कुछ प्रमुख अंश प्रस्तुत हैं-

हिन्दू धर्मशास्त्रों एवं हिन्दूजाति निर्णय के अन्वेषणकर्ता श्रोत्रिय पंडित छोटेलाल शर्मा, जिन्हें तत्कालीन भारत सरकार ने इस कार्य के लिये सन् 1901 में नियुक्त किया था, ने अपनी खोज और शोध को एक ग्रन्थ के रूप में सन 1928 में प्रकाशित किया था। इस ग्रन्थ में उत्तर-प्रदेश (तत्कालीन युक्त प्रदेश) के अन्दर विद्यमान समस्त जाति-धर्म के लोगों के बारे में सप्रमाणित उल्लेख किया गया था। इस पुस्तक में अर्कवंशी क्षत्रियों के बारे में शर्मा जी कहते हैं-

"यह एक कृषि करने वाली जाति है। विशेष रूप से ये लोग अवध में हैं परन्तु युक्त प्रदेश में भी कहीं-कहीं पाये जाते हैं। इस जाति की उत्पत्ति विषयक अन्वेषण करने से ऐसा निश्चय हुआ है कि अर्क नाम सूर्य और वंश नाम संतति (कुल) अर्थात जो सूर्यवंशी थे वो लोग ही अर्कवंशी कहलाये गये। जिन सूर्यवंशियों के पास राज्य व धनबल रहा वे सूर्यवंशी राजपूत कहाते रहे और जिन्हें विपत्तिवश (प्राणरक्षार्थ) इधर-उधर भागना पड़ा वे बिचारे कृषि आदि के धन्धे में लगकर कहीं अर्कवंशी और कहीं अरक और अरख कहाने लगे। इतिहासों से पता चलता है कि हरदोई जिले में किसी समय इनका प्रभुत्व था।"

मुरादाबाद निवासी विद्यावारिद पंडित ज्वाला प्रसाद मिश्र रचित ऐतिहासिक शोध ग्रन्थ 'जाति भाष्कर', अर्कवंशी क्षत्रियों का वर्णन 'क्षत्रिय खण्ड' में करते हुये लिखता है-*"अर्कवंश-यह जाति अपने को सूर्यवंशी कहते हैं और अब यह अरख कहाते हैं। मि. क्रुक साहब ने सूर्य उपासक तिलोकचन्द के समुदाय का नाम अर्कवंश लिखा है।"* (जाति भाष्कर पृष्ठ-263)

ऐतिहासिक ग्रन्थ 'क्षत्रिय वंशार्णव' के लेखक, ऐतिहासिक शोधकर्ता एवं अखिल भारतीय क्षत्रिय महासभा के वरिष्ठ इतिहासकार श्री भगवानदीन सिंह सोमवंशी के अनुसार अर्कवंशी क्षत्रिय मूलरूप से सूर्यवंशी क्षत्रिय हैं, जो कि 'अर्क', 'अरक', 'अरख' आदि नामों से भी जाने जाते हैं। अर्कवंशी क्षत्रियों के विषय में वे अपने ग्रन्थ के पृ. 411-412 पर लिखते हैं-*"यह सूर्यवंश की शाखा रघुवंश जिसमें रामचन्द्र और रामपुत्र कुश हुए। कुश के वंशजों की एक शाखा शाक्यवंश चली, जिसमें शाक्यवंशी गौतम तथा गौतमबुद्ध हुए जो शाक्यवंशी शुद्धोधन के पुत्र थे।"* ग्रन्थ पृ. 413 पर आगे लिखता है-*"इस वंश का इतिहास*

बहुत प्राचीन है और गौरवशाली भी। ...अर्कवंश प्राचीन राजवंश है [illegible] राज्य तथा ठिकाने हरदोई में सण्डीला (अवध गजेटियर), बहराइच का अकोनी ([illegible] गजेटियर), इकौना, अकौना (चीनी यात्री व्हेनसांग) ... इसके अतिरिक्त अर्कवंश का राज्य वांतली, बेनीगंज, नर्वल, साढ़ सलेमनपुर, पडरी (उन्नाव), खागा (फतेहपुर), अयाह आदि में रहा है।"

15-5-1988 को भरवारी (इलाहाबाद) में अखिल भा. क्ष. महासभा के तत्वाधान में हुए एक क्षत्रिय सम्मेलन में श्री भगवानदीन सिंह सोमवंशीजी (जो कि अखिल भारतीय क्षत्रिय महासभा के तत्कालीन राष्ट्रीय संगठन मंत्री भी थे) ने उपस्थित क्षत्रिय जनसमूह के समक्ष घोषणा करते हुए कहा था- *"....मैं अ.भा.क्ष. महासभा का इतिहासकार होने के नाते पूरी तरह छान-बीन करने के पश्चात् यह प्रमाणित करता हूँ कि अर्कवंशी मूलरूप से सूर्यवंशी क्षत्रिय हैं और महासभा के राष्ट्रीय संगठन मंत्री की हैसियत से इन्हें क्षत्रियों की मुख्यधारा में मिलाने की घोषणा करता हूँ।"*

नामोत्पत्ति

जैसे चन्द्रवंश का एक पर्यायवाची सोमवंश है, वैसे ही सूर्यवंश का पर्यायवाची अर्कवंश है। सूर्यवंशी क्षत्रिय आदिकाल से ही स्वयं को सूर्यवंशी, आदित्यवंशी, अर्कवंशी और मित्रवंशी कहते थे, तथा ये शब्द समानार्थी शब्दों के रूप में प्रयोग किए जाते थे; उदाहरणार्थ, सूर्यवंश कुलज रामचन्द्रजी को प्राचीन ग्रंथों में अर्क शिरोमणि रामचन्द्र भी कहा गया है। सूर्यवंश कुलज अर्कवंशी क्षत्रिय कालान्तर में विभिन्न शाखाओं के रूप में स्थापित हो गये। अर्कवंश के स्थापकों ने अपने मूलवंश को इंगित करने के साथ-साथ अपनी अलग पहचान कायम करने के उद्देश्य से 'अर्क' नाम धारण किया था, यानि दूसरे शब्दों में, जिन सूर्यवंशियों ने 'अर्क' नाम धारण किया वे ही 'अर्कवंशी' कहलाए। 'अर्क' एक संस्कृत शब्द है जो कि 'सूर्य' का पर्यायवाची है। जिस प्रकार भारतवर्ष की अनेक जातियाँ अपने मूल वंशों अथवा कर्मों के नाम पर जानी जाती हैं, उसी प्रकार 'सूर्यवंश' के नाम पर 'अर्कवंश' नाम की उत्पत्ति हुयी। वर्तमान 'अरख' शब्द 'अर्क' का ही बिगड़ा हुआ स्वरूप है। धनबल एवं राजसत्ता छिन जाने के बाद निर्बल एवं अशिक्षित अर्कवंशियों को लोग पहले 'अरक', फिर 'अरख' कहने लगे।

अर्कवंशी क्षत्रिय बन्धुओं को चाहिये कि वे बिगड़े हुये 'अरख' शब्द के बजाए मूलशब्द 'अर्कवंशी' का प्रयोग करें तथा दूसरों से भी करवायें।

सिंहान्त नामों का प्रयोग

प्राचीन ग्रन्थों में अर्कबन्धु गौतम बुद्ध को 'शाक्यसिंह' नाम से सम्बोधित किया गया है तथा 'सिंह' उपाधि का प्रयोग सर्वप्रथम शाक्यवंशी क्षत्रियों द्वारा ही किया गया था; किन्तु क्षत्रियों

में सिंहान्त नामों का प्रयोग, मुख्यतः, राजा गुहादित्य अर्कवंशी के वंशज राजा खुमान देव द्वारा 'सिंह संगठन' की स्थापना के बाद से ही प्रारम्भ हुआ। बाह्य आक्रमणकारियों से निपटने के लिये नवीं शताब्दी के अंत में चित्तौड़ के सूर्यवंशी राजा खुमान देव ने अपने पूर्वजों द्वारा स्थापित 'अर्कमण्डल' के समान ही एक क्षत्रिय-संघ की स्थापना की थी, जिसे 'सिंह संगठन' कहा गया। इस संगठन के केसरिया ध्वज पर 'सिंह' का एक चिन्ह बना हुआ था। इस संघ में शामिल सूर्यवंशी क्षत्रिय अपने नामों के आगे 'सिंह' लगाने लगे। धीरे-धीरे उत्तर-भारत के गैर-सूर्यवंशी क्षत्रियों में भी सिंहान्त नामों का प्रचलन बढ़ता चला गया।

वर्तमान काल में देखा गया है कि कुछ अर्कवंशी क्षत्रिय (जिसमें खंगार क्षत्रिय भी शामिल हैं) अपने नामों के आगे 'सिंह' लगाने में संकोच करते हैं। प्रिय भाइयों, जब आपके पूर्वजों द्वारा प्रारम्भ किए गये उपनाम को अन्य क्षत्रिय शान से इस्तेमाल करते हैं, तो फिर आप क्यों अपने पूर्वजों के दिये गये 'सिंह' नाम को अपनाने में हिचकिचाते हैं। 'सिंह' उपाधि सूर्यवंशी परम्परा की परिचायक है, अतः सूर्यवंशी क्षत्रियों की सच्ची संतान होने के नाते आपको इस उपाधि का बेझिझक प्रयोग करना चाहिये।

जितना ही हम अध्ययन करते हैं, उतना ही हमको अज्ञान का आभास होता जाता है।

- शैली

★

धूर्त अध्ययन का तिरस्कार करते हैं, सामान्य जन उसकी प्रशंसा करते हैं और ज्ञानी उसका उपयोग करते हैं।

- शैली

★

आत्म-सम्मान समस्त गुणों की आधारशिला है।

- सर जॉन हरशल

★

अज्ञान ही पाप है। शेष सारे पाप तो उसकी छाया मात्र हैं।

- आचार्य रजनीश

महाराजा तिलोकचन्द

दसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में अर्कवंश में तिलोकचन्द नाम के एक प्रतापी राजा हुए हैं। उन्होंने उत्तर-कोशल देश के ब्रम्हाइच (बहराइच) को अपनी राजधानी बनाया। इसके पूर्व अर्कवंशी राजा नन्दिवर्धन के पुत्र बालार्क ने (लगभग 650 ई.पू. में) सर्वप्रथम बहराइच में अपना राज्य स्थापित किया था। लगभग 1600 वर्षों के उपरान्त उनके वंशज तिलोकचन्द ने पुनः बहराइच में अर्कवंशी राज्य स्थापित किया। अन्य अर्कवंशी क्षत्रिय राजाओं की तरह तिलोकचन्द भी सूर्य के उपासक थे। उन्होंने अपने पूर्वजों की भांति ही 'बालार्क' उपाधि धारण की थी तथा उनका वंश भी 'अर्कवंश' कहलाया।

अवध गजेटियर, भाग-2, पृ. 354 (1862) पर लिखता है-

"Tilok Chand is said to have been a worshipper of the sun. Near Bahraich is a temple of the sun in his honour called 'Balark'. "

अनुवाद-तिलोक चन्द सूर्य के उपासक थे, जिनकी यादगार में बहराइच के समीप एक मन्दिर बना हुआ है, जो कि 'बालार्क' मन्दिर कहलाता है।

सन् 918 ई. के लगभग दिल्ली के राजा विक्रमपाल को पराजित करके तिलोकचन्द ने दिल्ली पर अपना आधिपत्य कायम किया। अर्कवंश के ये पहले राजा थे जिन्होंने दिल्ली पर अपना शासन स्थापित किया।

इस सम्बन्ध में अवध गजेटियर (पृ. 354) लिखता है -

"This chief fixed upon Bahraich as the seat of his empire, and led a powerful army against Raja Bikrampal of Delhi, whom he defeated and dispossessed of his kingdom."

अनुवाद-इस राजा ने बहराइच को अपनी राजधानी बनाया और एक शक्तिशाली सेना लेकर दिल्ली के राजा विक्रमपाल पर चढ़ाई कर दी, तथा उसे परास्त कर राज्य-विहीन कर दिया।

दिल्ली को जीतने के बाद राजा तिलोकचन्द ने अपने राज्य का विस्तार किया तथा कई अन्य राज्यों एवं नगरों को अपने अधीन कर लिया।

उपरोक्त गजेटियर इस संबंध में आगे लिखता है-

"He held all the country upto Delhi, and all Oudh upto mountains."

अनुवाद-उन्होंने दिल्ली तक सम्पूर्ण क्षेत्र को, तथा पहाड़ी इलाकों तक पूरे अवध को अपने कब्जे में ले लिया।

राजा तिलोकचन्द से जुड़े भ्रम

राजा तिलोकचन्द अर्कवंश के एक प्रतापी राजा थे, किन्तु कुछ लोगों ने उन्हें दूसरी जाति का बताया है। जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है कि भारतीय इतिहास में तिथियों का बहुत अधिक घालमेल है। इसी का लाभ उठाकर इस वीर अर्कवंशी राजा के बारे में पोंगा-पण्डितों एवं छद्म इतिहासकारों द्वारा द्वेष एवं स्वार्थवश अनेक भ्रम उत्पन्न कर दिये गये। प्रभुसत्ता की लड़ाई ही इन दुष्प्रचारों का मूल कारण रहा है। अंग्रेज भी राजा तिलोकचन्द से संबंधित अपने लेखों में भ्रमित दिखाई पड़ते हैं। एक तरफ तो राजा तिलोकचन्द को 'अर्कवंशी' एवं सूर्योपासक बताया गया है, तो वहीं दूसरी तरफ उनके कहीं बैस, कहीं गौतम तो कहीं बोहरा जाति का होने की सम्भावना भी व्यक्त की गयी है। यह विरोधाभास अंग्रेजों के भ्रम को उजागर करता है। इन विरोधाभासों के विषय में अन्वेषण करने पर यह ज्ञात होता है कि जिस प्रकार भारतीय इतिहास में लगभग चौदह 'विक्रमादित्य' नामधारी राजा हुये हैं, उसी प्रकार अलग-अलग जातियों में तिलोकचन्द नाम के भी कई राजा हुये। उदाहरणतया, इतिहास में एक मुगलकालीन राजा तिलोकचन्द का उल्लेख मिलता है, जिसे बाबर ने 'खानजादा' की उपाधि दी थी। इसके अलावा एक अन्य बैस राजा तिलोकचन्द का भी उल्लेख मिलता है, जिससे 'तिलोकचन्दी' बैसों की शाखा उत्पन्न हुयी। यही नहीं, एक बछगोती राजा तिलोकचन्द का भी उल्लेख मिलता है। तिथियों के घालमेल के कारण इन सभी को एक ही राजा तिलोकचन्द समझ लिया गया। अतः उपरोक्त तथ्यों के आधार पर संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि विभिन्न कालों में अर्कवंश के अलावा अन्य जातियों में भी तिलोकचन्द नामक राजा हुए हैं, किन्तु इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि दसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में दिल्ली पर राज करने वाले राजा तिलोकचन्द अर्कवंशी ही थे।

अवध गजेटियर, पृ. 354, पर लिखता है-

"Tilok Chand is said to have been a worshipper of sun..... 'Ark' is sanskrit for 'sun'.... He accordingly called them 'Arkbans' and to his immediate family gave the title of 'Ark bansi'.... Later on when they lost all power they became known as 'Arakh'"

अनुवाद-तिलोक चन्द सूर्य के उपासक थे। ...'अर्क' शब्द संस्कृत में सूर्य का पर्यायवाची है। अतः उन्होंने अपने वंश को 'अर्कवंश' कहा तथा अपने वंशजों को 'अर्कवंशी'। कालान्तर में सत्ताविहीन होने के पश्चात् उन्हें 'अरख' कहा गया।

सूर्योपासक होने के साथ-साथ, राजा तिलोकचन्द ने प्राचीन अर्कवंशी क्षत्रिय राजाओं की भाँति 'बालार्क' उपाधि धारण की थी। इससे यह स्वतः ही स्पष्ट हो जाता है कि राजा तिलोकचन्द (सन् 918 ई.) अर्कवंशी ही थे।

ऐसा नहीं है कि विरोधाभासी बातें सिर्फ राजा तिलोकचन्द के विषय में ही मिलती हैं; भारत के कई अन्य राजाओं के विषय में भी ऐसे भ्रामक उल्लेख मिलते हैं। उदाहरणतया, एक राजा सोहेलदेव को कहीं भर, कहीं थारू, कहीं बैस, कहीं कलहंस तो कहीं जैन बताया गया है।

बहराइच गजेटियर-45 (पृ. 117) लिखता है-

"Suhal Deo or Sohel Deo was presumably a Bhar, although he is also described as a Tharu, a Kalhans, a Bais or even a Jain."

अनुवाद-सुहालदेव अथवा सोहेलदेव सम्भवतः 'भर' जाति का था, हालाँकि उसे थारू, कलहंस, बैस अथवा जैन भी बताया जाता है।

अब प्रश्न ये उठता है कि एक ही व्यक्ति कई अलग-अलग जातियों का कैसे हो सकता है? इसका सीधा सा जवाब यही है कि एक नाम के कई राजाओं को एक ही व्यक्ति समझ लिया गया। यहाँ पर ये भी उल्लेखनीय है कि अंग्रेजों ने 'भर' जाति को 'रहस्यमय जाति' (mysterious race) करार देते हुये कई जातियों को उससे जोड़ने का प्रयास किया है, जिनमें बैस, बिसेन, रैकवार, राजकुमार आदि राजपूत जातियों के अलावा अहीर, गूजर आदि जातियाँ भी शामिल हैं। परन्तु, ये सभी विचार सिर्फ सम्भावनाओं पर आधारित हैं, न कि किसी ठोस धरातल पर।

राजा तिलोकचन्द से संबंधित एक अन्य भ्रम भी है कि वे अर्कवंशी क्षत्रिय जाति के आदिपुरुष थे, परन्तु यह वास्तविकता से परे है क्योंकि राजा तिलोकचन्द (सन् 918 ई.) से सैकड़ों वर्ष पूर्व ही 'अर्कवंश' का उद्भव हो चुका था, जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। इसके अलावा, सन् 918 ई. से पहले अर्कवंशी क्षत्रिय जाति से संबंधित अनेक उल्लेख प्राप्त होते हैं। उदाहरणतया-बहराइच गजेटियर पृ. 194 पर लिखता है-

"...Ikauna itself is supposed to be the old town of the Arkhavana which is mentioned by the Chinese traveller Hiuen Thsiang ."

अनुवाद-इकौना पुराने कस्बे अर्कौना का अपभ्रन्श मालूम पड़ता है, जिसका वर्णन चीनी यात्री व्हेनसांग ने किया है।

'एन्शियन्ट ज्योग्राफी आफ इण्डिया' में दिये गये नक्शे में इकौना नगर विद्यमान है। गौरतलब है कि व्हेनसांग 7वीं शताब्दी के प्रारम्भ में भारत आया था तथा उसने अपने संस्मरणों में 'अर्कौना' नामक नगर का उल्लेख किया है, जिसे अब इकौना कहा जाता है। इस नगर को 7वीं शताब्दी से पूर्व एक अर्कवंशी राजा ने बसाया था। इससे विदित होता है कि राजा तिलोकचन्द (सन् 918 ई.) से पहले भी अर्कवंशी क्षत्रिय जाति का वर्चस्व था। वास्तव में राजा तिलोकचन्द इस जाति के आदिपुरुष नहीं थे, बल्कि इस वंश में पहले भी कई महान व्यक्तित्व हुये थे, जैसे महाराज आर्यक, महाराज नंदिवर्धन, राजा बालार्क, अर्कबन्धु गौतमबुद्ध, राजा कनकसेन, इत्यादि।

दिल्ली का इतिहास एवं अर्कवंश

दिल्ली पर अर्कवंश का शासन दसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में राजा तिलोकचन्द के द्वारा स्थापित किया गया था, जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। राजा तिलोकचन्द की नौ पीढ़ियों ने यहाँ पर राज्य किया, जिसका विवरण निम्नलिखित है-

1. राजा तिलोकचन्द (918-972 ई., 54 वर्ष)
2. राजा विक्रमचन्द (972-984 ई., 12 वर्ष)
3. राजा अमीनचन्द (984-994 ई., 10 वर्ष)
4. राजा रामचन्द (994-1007 ई., 13 वर्ष)
5. राजा हरीचन्द (1007-1021 ई., 14 वर्ष)
6. राजा कल्यानचन्द (1021-1031 ई., 10 वर्ष)
7. राजा भीमचन्द (1031-1046 ई., 15 वर्ष)
8. राजा लोकचन्द (1046-1071 ई., 25 वर्ष)
9. राजा गोविन्दचन्द (1071-1092 ई., 21 वर्ष)
10. महारानी भीमादेवी (1092-1093 ई., 1 वर्ष)

(नोट-उपरोक्त विवरण कई अलग-अलग स्रोतों पर आधारित है। कुछ स्रोतों में राजाओं के नाम मेल नहीं खाते, उदाहरणतया-कहीं-कहीं भीमादेवी को पद्मावती भी लिखा हुआ है। इसी प्रकार राजा अमीनचन्द का एक अन्य नाम मानकचन्द तथा राजा तिलोकचन्द का नाम मलुखचन्द भी प्राप्त होता है, परन्तु दिल्ली की राजवंशावली तथा गजेटियरों की तिथियों एवं उल्लेखों के मिलान पर राजा तिलोकचन्द की वंशावली (918-1093 ई.) स्पष्ट हो जाती है।)

राजा गोविन्दचन्द निःसतान थे। रानी भीमादेवी उनकी पत्नी थीं, जो कि अत्यन्त धार्मिक प्रवृत्ति वाली महिला थीं। अपने पति (राजा गोविन्दचन्द) के शासनकाल में वे सदैव प्रजा की भलाई के कार्यों में समर्पित रहीं। उन्होंने अनेक सेवा-कार्य किये तथा अपने दयालु एवं दानी स्वभाव के कारण प्रजा में बहुत लोकप्रिय रहीं। राजा गोविन्दचन्द भी उनके प्रत्येक महान कार्य में बराबर के भागीदार रहे। त्याग, दान, समर्पण और जन-सेवा की भावना आदिकाल से ही सूर्यवंशियों की परम्परा का प्रमुख हिस्सा रही थी। इसी भावना के वशीभूत होकर राजा हरिश्चन्द्र ने अपना राजपाट तक त्याग दिया था और इसी परम्परा को निभाने हेतु अर्क शिरोमणि रामचन्द्रजी राजगद्दी छोड़ वनवास को चले गए थे। इसी भावना से ओत-प्रोत अर्कबंधु गौतम बुद्ध ने ऐश्वर्य-युक्त जीवन की अपेक्षा मानवता की भलाई का कठिन मार्ग अपनाया तथा सूर्यवंश की इसी महान परम्परा को निभाने हेतु सम्राट हर्षवर्धन जीवन-पर्यन्त प्रयासरत रहे। त्याग, दान और जनकल्याण की यही प्रवृत्ति अपने पूर्वजों की भांति राजा गोविन्दचन्द और उनकी पत्नी भीमादेवी ने भी पायी थी। पति की मृत्यु के बाद भीमादेवी ने एक वर्ष तक राज्य किया और उपयुक्त उत्तराधिकारी के अभाव में अपने धर्मगुरु हरगोविन्द को अपना राज्य दान करके परलोक सिधार गयीं।

सूर्यवंश के महान दानी राजा हरिश्चंद्र के बाद भारत में ये पहली ऐतिहासिक घटना थी जब अर्कवंश की ही एक महारानी ने अपना सम्पूर्ण राज्य किसी अन्य को दान में दे दिया। धन्य हैं दानी भीमादेवी जैसे महान अर्कवंशी पूर्वज जिन्होंने देश की अखण्डता एवं एकता को अक्षुण बनाए रखने हेतु निज-स्वार्थ को कभी कोई महत्त्व नहीं दिया।

अवध गजेटियर भाग-2 पेज संख्या 354 (सन् 1862) पर लिखता है-

"His (Tilokchand's) dynasty lasted for nine generations."

अनुवाद-तिलोकचन्द की नौ पीढ़ियों ने (दिल्ली पर) राज किया।

गजेटियर आगे लिखता है-

"(The dynasty) ended with Rani Bhimadevi, wife of Govind Chand, who died without an heir, and bequeathed the kingdom to her priestly confessor (Guru) Hargobind."

अनुवाद-इस वंश का शासन राजा गोविन्दचन्द, जो कि बिना उत्तराधिकारी के मर गये थे, की पत्नी रानी भीमादेवी के साथ समाप्त हुआ। उन्होंने अपना राज्य अपने धर्मगुरु हरगोविन्द को दान में दे दिया था।

दिल्ली पर अर्कवंशी क्षत्रियों का राज्य सन् 918 ई. से 1093 ई. तक, यानि 175 वर्षों तक रहा। तदोपरान्त, रानी भीमादेवी के धर्मगुरु हरगोविन्द की चार पीढ़ियों ने दिल्ली पर राज किया। यह वही समय था जब उत्तर भारत में राजपूत एक शक्ति के रूप में उभर चुके थे, तथा स्थानीय क्षत्रियों के साथ उनका संघर्ष चल रहा था। सन् 1093 ई. में दिल्ली की राजसत्ता महारानी भीमादेवी द्वारा दान कर दिए जाने के बाद भी तिलोकचन्द के कई वंशज (अर्कवंशी क्षत्रिय) दिल्ली और उसके आसपास ही मौजूद रहे तथा किसी न किसी रूप में दिल्ली राज्य से जुड़े रहे।

हरगोविन्द के वंशजों के बाद दिल्ली पर तोमरों का अधिकार हो गया। सन् 1163 ई. के आसपास अजमेर के चौहान राजा विशालदेव ने तोमर राजा अनंगदेव को हराकर दिल्ली पर कब्जा कर लिया। सन् 1192 ई. में हुये द्वितीय तराइन युद्ध में चौहान राजा पृथ्वीराज को हराकर शहाबुद्दीन गौरी ने दिल्ली पर तुर्क राज कायम कर दिया।

सन् 1191 ई. एवं सन् 1192 ई. के तराइन युद्धों में अर्कवंशी क्षत्रियों ने भारी संख्या में पृथ्वीराज चौहान की सेना में शामिल होकर तुर्कों से युद्ध किया था एवं अनेक अर्कवंशी योद्धा वीरगति को प्राप्त हुये थे। मध्यकालीन उल्लेखों के अनुसार तराइन युद्धों में वीर अर्कवंशी क्षत्रियों ने तुर्क सेना को अत्यधिक क्षति पहुँचायी थी। पृथ्वीराज चौहान की पराजय के बाद, अर्कवंशी क्षत्रियों के शौर्य एवं अदम्य साहस से त्रस्त मुहम्मद गौरी के सेनापति शुबुदगीन ने अर्कवंशी क्षत्रियों को चुन-चुनकर नष्ट करना प्रारम्भ कर दिया था।

अर्कवंशी क्षत्रियों द्वारा स्थापित राज्य

जिस समय दिल्ली के सिंहासन पर अर्कवंशियों का शासन था उसी समय अवध में अर्कवंशी क्षत्रियों की शक्ति अपनी चरम उत्कर्ष पर थी। 10वीं शताब्दी से लेकर 14वीं शताब्दी तक अर्कवंशी क्षत्रियों ने सम्पूर्ण उत्तर भारत को अपने प्रभाव क्षेत्र में ले लिया था। 10वीं और 11वीं शताब्दी में अर्कवंशी क्षत्रिय बहुत ही शक्तिशाली थे तथा पहाड़ी तराई इलाकों से लेकर सम्पूर्ण अवध प्रान्त पर इनका कब्जा था। 14वीं शताब्दी के मध्य तक अर्कवंशी राज्यों में लोहगाँजर, ब्रम्हाइच, सरसांडी, मुरादाबाद, हरदोई, सण्डीला, मलिहाबाद, दांतली, पड़री (उन्नाव), फतेहपुर में कुकरा-कुकरी, खागा, अयाह, काथू, ललौला, अठगढ़िया, गढ़ाकोट, रेह तथा कोड़ा परगना से लेकर कड़ा परगना तक, कानपुर में नरवल और साढ़-सलेमपुर, इलाहाबाद में बम्हरौली (अर्कौली), सुजातपुर, परसखी, इत्यादि शामिल थे।

जाति व कौम (Tribes and Castes) नामक ग्रंथ (भाग-1, पृ. 82) लिखता है-

"The Arakhs appear at an early date to have obtained considerable power in Oudh specially in Hardoi."

अनुवाद-पुराने समय में अर्कवंशी अवध प्रान्त में एक शक्ति के रूप में स्थापित थे और विशेषकर हरदोई में उन्होंने अत्यधिक शक्ति प्राप्त कर ली थी।

भारतीय पुरातत्व विभाग की रिपोर्टों के अनुसार अवध प्रान्त व दोआबा क्षेत्र (उ.प्र.) के विभिन्न हिस्सों (मुख्यतः हरदोई, कानपुर, इलाहाबाद, फतेहपुर, इत्यादि) से अर्कवंशियों द्वारा निर्मित किलों के अवशेष प्राप्त होते हैं, जिससे यह सिद्ध होता है कि इस प्रान्त में कभी अर्कवंशी क्षत्रियों की प्रभुसत्ता थी।

सण्डीला राज्य

उत्तर-प्रदेश के उत्तरी क्षेत्र में स्थित नैमिषारण्य के समीप दिल्ली-लखनऊ राजमार्ग और रेलमार्ग पर, जनपद हरदोई में सण्डीला कस्बा स्थित है। जनश्रुति है कि शाण्डिल्य ऋषि की तपस्थली होने के कारण इस स्थान का नाम सण्डीला पड़ा। मध्यकालीन ऐतिहासिक साक्ष्यों और गजेटियर्स तथा सेन्सेज़ रिपोर्टों के अनुसार सण्डीला नगर की स्थापना अर्कवंशी राजा सलहचन्द (सल्हीय सिंह) द्वारा की गयी थी। बहराइच से लेकर देहली एवं सम्पूर्ण अवध के सम्राट तिलोकचन्द अर्कवंशी के वंश में अर्कवंश शिरोमणि दो भाई सलहचन्द और मलहचन्द हुये, जो कि कालान्तर में क्रमशः सल्हीय और मल्हीय के नाम से जाने गये। इन्होंने 13वीं शताब्दी के प्रारम्भ में सण्डीला राज्य की नींव रखी।

संयुक्त प्रान्त (आगरा-अवध) का हरदोई जिला गजेटियर (XLI-1ए 1904) पृ. 255 पर लिखता है-

"The town of Sandila is said to have been founded by the Arakhs."

अनुवाद-पता चलता है कि सण्डीला नगर की स्थापना अर्कवंशियों द्वारा की गयी थी।

गजेटियर पृ. 63 पर भी लिखता है-

"The Arakhs in Sandila are said to have been the lords of the land...... All the ancient village sites in the Sandila tehsil are ascribed to the Arakhs."

अनुवाद-सण्डीला क्षेत्र के स्वामी अर्कवंशी हुआ करते थे।.....सण्डीला तहसील के गाँवों में मौजूद सभी पुराने खंडहर अर्कवंशियों के बताये जाते हैं।

अवध गजेटियर के द्वारा इस बात की भी पुष्टि होती है कि सण्डीला और मलिहाबाद, क्रमशः, सल्हीय और मल्हीय (सलहचंद और मलहचंद) द्वारा स्थापित किये गये थे। अवध गजेटियर पृ. 301 पर लिखता है-

"Two brothers of the (Arakh) tribe, Salhia and Malhia, are said to have founded one Salhia Purwa now Sandila, the chief town of the pargana; the other Malhiabad, in the adjacent pargana of that name in the Lucknow district."

अनुवाद-पता चलता है कि अर्कवंशी जाति के दो भाइयों, सल्हीय और मल्हीय, में से एक ने सल्हीयपुर, जिसे सण्डीला कहा जाता है तथा जो कि परगने का मुख्य नगर है, बसाया था तथा दूसरे ने मलिहाबाद, जो कि लखनऊ जिले के अन्तर्गत आता है, की स्थापना की थी।

अवध गजेटियर (पृ. 301) इस बात की भी पुष्टि करता है कि सण्डीला राज्य पर अर्कवंशी क्षत्रियों का राज चौदहवीं शताब्दी के अन्तिम भाग तक रहा। गजेटियर लिखता है-

"The Arakhs held the tract till towards the end of the 14th century."

अनुवाद-अर्कवंशियों ने चौदहवीं शताब्दी के अन्तिम भाग तक इस क्षेत्र (सण्डीला) पर कब्जा कायम रखा।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि सण्डीला एवं मलिहाबाद की स्थापना अर्कवंशी क्षत्रियों के पूर्वज दो भाइयों सल्हीय व मल्हीय (सलहचंद और मलहचंद) द्वारा की गयी थी। इन दोनों भाइयों ने 13वीं शताब्दी के प्रारम्भ में सण्डीला राज्य की नींव रखी। यह वही

काल था जब तराइन के द्वितीय युद्ध में पृथ्वीराज चौहान के नेतृत्व वाली क्षत्रिय सेना को हराने के बाद तुर्क शक्ति हिन्दुस्तान में अपने पाँव पसार रही थी।

प्रारम्भिक जीवन- राजा सल्हीय सिंह का प्रारम्भिक जीवन अत्यधिक उतार-चढ़ावों से परिपूर्ण था। उनके पिता अवध के एक इलाके के राजा थे तथा पृथ्वीराज चौहान के सहयोगी थे। तराइन के द्वितीय युद्ध में तुर्क सेना से लड़ते हुये वे वीरगति को प्राप्त हुये थे। उस समय सल्हीय सिंह की वय मात्र 15 वर्ष और मल्हीय सिंह की वय मात्र 8 वर्ष की थी। चौहानों की पराजय के बाद तुर्कों ने उनके अधीन सभी इलाके छीन लिये तथा उनके सहयोगी सामन्तों को परिवार सहित नष्ट कर दिया। तुर्कों से बचने के लिये दोनों भाई, सल्हीय सिंह और मल्हीय सिंह, अपने कुछ विश्वासपात्रों के साथ भाग निकले। कई वर्षों तक नाम बदलकर, जंगलों आदि में छिपते-छिपाते दोनों कन्नौज से पूर्व की ओर हरदोई के वर्तमान सण्डीला क्षेत्र में पहुँचे। उस समय यह जगह शाण्डिल्य ऋषि की तपस्थली के रूप में मशहूर थी। यहाँ के हरे-भरे सुरम्य वातावरण ने दोनों का मन मोह लिया। सल्हीय सिंह ने यहीं पर अपना राज्य स्थापित करने का निर्णय लिया। ये सन् 1205 ई. के आसपास का समय था।

सल्हीय सिंह ने यहाँ पर सल्हीयपुर नामक नगर की स्थापना की और उसे अपने राज्य की राजधानी बनाया। अपने कुशल नेतृत्व और रणकौशल के बल पर उन्होंने अपने राज्य का काफी विस्तार कर लिया तथा दांतली, मलिहाबाद, काकोरी (लखनऊ), सण्डीला, कल्यानमल, सांडी (हरदोई) से लेकर मुरादाबाद तक का कुछ इलाका उनके प्रभाव क्षेत्र में आ गया।

मल्हीय सिंह जब वयस्क हुये तब उन्हें सण्डीला राज्य के अन्तर्गत मलिहाबाद क्षेत्र के प्रशासन का भार सौंपा गया। इस क्षेत्र के मुख्य नगर का नाम मल्हीय सिंह के नाम पर 'मल्हीयपुर' तथा बाद में 'मलिहाबाद' हुआ।

राजा सल्हीय सिंह का जीवन चरित्र- राजा सल्हीय सिंह असाधारण योग्यताओं से परिपूर्ण व्यक्ति थे। उनमें महत्त्वाकांक्षा और दृढ़-संकल्प कूट-कूटकर भरा हुआ था। सामरिक दृष्टिकोण से उनका व्यक्तित्व महान था। उन्हें संगठन तथा युद्ध संचालन की क्षमता पैतृक विरासत में प्राप्त हुयी थी। वह एक वीर सैनिक तथा एक सफल सेनानायक के सभी गुणों से परिपूर्ण थे। अपने सूर्यवंशी पूर्वजों के समान ही राष्ट्रवादी होने के साथ-साथ वे अत्यन्त उदार, समतावादी, मानवतावादी एवं प्रजापालक राजा थे। अपनी प्रजा के कष्टों को दूर करने हेतु वे सदैव प्रयासरत रहते थे। उन्होंने पेयजल एवं सिंचाई हेतु कई कुएँ और जलाशय खुदवाये तथा प्रजा की सुरक्षा दृष्टि से कई गढ़ियों का निर्माण करवाया। गढ़ी जिन्दौर, तरौना (नौरंगगढ़), सहिजना, सामदखेड़ा, मुसलेवां, सरसांडी, दांतली, बिजनौर, मुरादाबाद, लोहगाँजर आदि स्थानों पर आज भी ये गढ़ियां टीलों के रूप में विद्यमान हैं तथा अर्कवंश के स्वर्णिम इतिहास की मूक गवाही दे रही हैं।

राजा मल्हीय सिंह- राजा सल्हीय सिंह के अनुज राजा मल्हीय सिंह अपने भाई के समान ही वीर और दृढ़-प्रतिज्ञा वाले व्यक्ति थे। मलिहाबाद नगर की मजबूत नींव उनके द्वारा ही डाली गयी थी। राजा सल्हीय सिंह अपने छोटे भाई को पुत्रवत् प्रेम करते थे और मल्हीय सिंह भी आँख मूंदकर अपने अग्रज की हर आज्ञा का पालन करते थे। प्रत्येक युद्ध में दोनों भाई साथ-साथ लड़ने जाते थे और उनके पराक्रम के आगे अच्छे-अच्छों के छक्के छूट जाते थे। अपने शौर्य के बल पर दोनों भाइयों ने अपना राज्य काफी विस्तृत कर लिया था। राजा मल्हीय सिंह मजबूत कद-काठी के लम्बे-चौड़े शक्तिशाली पुरुष थे। व्यायाम करना उनका प्रिय शौक था। एक बार एक युद्ध के दौरान पैर में घाव हो जाने के कारण राजा सल्हीय सिंह युद्ध-स्थल में गिर पड़े। मौके का फायदा उठाने के उद्देश्य से दुश्मन सेना का सेनापति उन पर झपटा, परन्तु इससे पहले कि उसकी तलवार घायल सल्हीय सिंह को छू पाती 'खटाक्' का स्वर हुआ और दुश्मन का सिर धूल-धूसरित हो गया। यह मल्हीय सिंह का शक्तिशाली वार था जिसने शत्रु-दम्भ को चूर-चूर कर दिया। अपने पूज्य बड़े भाई पर आँच आते देख मल्हीय सिंह का खून खौल उठा और उन्होंने फुर्ती के साथ दुश्मन को मौत के घाट उतार दिया। इसके बाद मल्हीय सिंह ने घायल राजा सल्हीय सिंह को अपनी पीठ पर इस प्रकार बांध लिया कि सल्हीय सिंह भी आसानी से तलवार चला सकें। तत्पश्चात् दोनों भाइयों ने युद्धभूमि में तलवारबाजी के वो जौहर दिखाए कि दुश्मनों के होश उड़ गए। आगे से मल्हीय सिंह तलवार चला रहे थे तो पीछे उनकी पीठ पर बंधे सल्हीय सिंह भी बखूबी अपने भाई की ढाल बनकर दुश्मनों पर वार कर रहे थे। अपने घायल राजा को लड़ता देख अर्कवंशी सेना दूने उत्साह के साथ युद्ध करने लगी और अंत में विजयश्री दोनों भाइयों को ही मिली।

दोनों भाइयों की वीरता के ढेरों किस्से मशहूर हैं जो आज भी बड़े-बूढ़ों से सुनने को मिल जाते हैं। कई लेखकों ने दोनों भाइयों की वीरता की चर्चा की है। सल्हीय और मल्हीय के विषय में पं. छोटेलाल शर्मा लिखते हैं-

"(अर्कवंश) *में सलहिय और मलहिय दो भाई बड़े वीर हुये हैं जिनमें से सलहिय ने अपने नाम पर सलहिया पुरवा बसाया था जिसे आजकल सण्डीला भी कहते हैं, चौदहवीं शताब्दी तक इनका राज्य मुरादाबाद और लखनऊ के बीच में रहा।*"

सन् 1206 ई. में मुहम्मद गौरी की मृत्यु के पश्चात् कुतुबउद्दीन ऐबक ने दिल्ली सल्तनत की स्थापना कर दी, तथा मुस्लिम शासक धीरे-धीरे अपना राज्य प्रसार करने लगा। शम्स-उद्-दीन अल्तमश (इल्तुतमिश, 1210-1236 ई.) के शासनकाल में दिल्ली सल्तनत का काफी विस्तार हुआ, तथा अवध प्रान्त के कई स्वतंत्र राज्य दिल्ली सल्तनत के अधीन हो गये। इस समय राजा सल्हीय सिंह अर्कवंशी का सण्डीला राज्य अत्यन्त शक्तिशाली था। तुर्कों की कुदृष्टि स्वतंत्र सण्डीला राज्य पर भी थी, परन्तु उसे जीतने का

उन्हें साहस न हुआ। दिल्ली सल्तनत के लड़ाकू सैयुयदों ने सन् 1220 ई. में ही जहाँ सण्डीला के पड़ोसी अन्य हिन्दू राज्य बिलग्राम पर कब्जा कर लिया था, वहीं 150 वर्षों तक सण्डीला पर आक्रमण करने की उनकी हिम्मत न हुयी। गजेटियर भी इस बात की पुष्टि करता है।

अवध गजेटियर पृ. 301 पर लिखता है-

"A century and a half earlier in the reign of Shams-ud-din Altmash, the Sayyad had driven out the Hindu lords of Bilgram and settled themselves there."

अनुवाद-(1370 ई. से) डेढ़ सौ वर्ष पूर्व, (1220 ई. में), शम्स-उद्-दीन अल्तमश के शासनकाल में, सैयुयदों ने बिलग्राम से हिन्दू सामन्तों को निकाल कर स्वयं को वहाँ स्थापित कर लिया था।

राजा सल्हीय सिंह ने कई वर्षों तक कुशलतापूर्वक शासन किया तथा सण्डीला राज्य को तत्कालीन शक्ति के रूप में स्थापित कर दिया। उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके वंशजों ने भी सण्डीला राज्य की शक्ति को कायम रखा। चूँकि अर्कवंशीय शासनकाल में सण्डीला शान्ति एवं समृद्धिपूर्ण शक्तिशाली राज्य था इसी कारण दूसरे राज्यों से सताये लोग भाग-भागकर सण्डीला में शरण लेने लगे थे, जिससे यह नगर काफी आबादी युक्त हो गया था।

इससे संबंधित एक उल्लेख संयुक्त प्रान्त (आगरा-अवध) गजेटियर (XLI, 1904) के पृ. 255 पर मिलता है। लिखा है-

" The tyranny and exactions of Muhammad Shah Tughlaq at Delhi are said to have contributed to the development of Sandila, whither fled many a refugee."

अनुवाद-दिल्ली के मुहम्मद शाह तुग़लक के तानाशाहीपूर्ण रवैये एवं शोषण से तंग होकर बहुत से शरणार्थी भागकर सण्डीला आ गये थे जिससे यह नगर काफी बड़ा हो गया।

महाराजा सल्हीय सिंह के वंशज महाराजा शीतल सिंह, जो कि देवी के उपासक थे, ने चौदहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में सल्हीयपुर का नाम अपनी इष्ट शीतला देवी के नाम पर शीतलपुर रख दिया था। सन् 1370 ई. में सैयुयदों के आक्रमण के समय तक सण्डीला इसी नाम से जाना जाता रहा। राजा शीतल अत्यन्त धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। उन्होंने ही सण्डीला के पुराने शीतला देवी मंदिर का निर्माण करवाया था। कालान्तर में कई श्रद्धालुओं द्वारा इस मंदिर का जीर्णोद्धार कराया गया, और आज भी इस मंदिर की बहुत मान्यता है।

सण्डीला राज्य का पतन- महाराजा शीतल सिंह के बाद सण्डीला राज्य की शक्ति क्षीण होने लगी थी तथा उसकी सीमायें सिकुड़ने लगी थीं। राजा मल्हीय सिंह के वंशजों ने भी मलिहाबाद राज्य को सण्डीला राज्य से अलग कर एक स्वतंत्र राज्य के रूप में स्थापित कर लिया था। इसके अलावा, दिल्ली सल्तनत तथा अन्य राज्यों के शोषित शरणार्थियों द्वारा सण्डीला में आकर बसने का क्रम अनवरत् जारी था। यह सिलसिला मुहम्मद तुग़लक (1325-51 ई.) के शासनकाल में कुछ ज्यादा ही बढ़ गया था, इसलिये सण्डीला राज्य तुग़लक वंश की आँखों की किरकिरी बना हुआ था। सन् 1351 ई. में फ़िरोज़शाह तुग़लक के दिल्ली की गद्दी पर सत्तासीन होते ही अवध के बचे-खुचे स्वतंत्र राज्यों को सल्तनत के अधीन करने की कवायद शुरू हो गयी। इस मुहिम में अर्कवंशी क्षत्रियों का सण्डीला राज्य भी शामिल था। सण्डीला राज्य की ख्याति सुनकर, टोह लेने के इरादे से फ़िरोज़शाह सन् 1353 ई. में सण्डीला आया था।

संयुक्त प्रान्त (आगरा- अवध) गजेटियर (XLI, 1904) पृ. 63 पर लिखता है-

" The town of Sandila was twice visited by Firoz Shah, once in 1353 A.D. and on his march to Lucknow, and also in 1374 A.D. on the way to Bahraich."

अनुवाद-फिरोजशाह दो बार सण्डीला नगर में आया था। एक बार सन् 1353 ई. में लखनऊ जाते समय, तथा दोबारा सन् 1374 ई. में बहराइच जाते समय।

सन् 1353 ई. में यहाँ से जाने के बाद उसने सण्डीला राज्य को फतह करने की योजनायें बनानी प्रारम्भ कर दीं, किन्तु उस समय अवध प्रान्त में विद्रोहों के चलते उसकी योजनायें कारगर न हो पायीं। इन विद्रोहों से निपटने के बाद सन् 1370 ई. में फ़िरोज़शाह ने अपने पीर भाई सैय्यद मख़दूम अलाउद्दीन को शीतलपुर (सण्डीला) फतेह करने की आज्ञा देकर एक विशाल सेना के साथ रवाना किया।

लोहगाँजर का अन्तिम युद्ध- सन् 1370 ई. में सैय्यद मख़दूम अलाउद्दीन की विशाल सेना सण्डीला राज्य की सीमा पर आ डटी। जैसे ही अर्कवंशी शीतलपुर (सण्डीला) नरेश को तुर्क़ सेना के आने की सूचना मिली, उन्होंने युद्ध का बिगुल बजवा दिया और ऐलान करवाया कि जिन्हें अपनी जाति, धर्म और मातृभूमि से प्यार हो वो केसरिया पग धारण करके युद्ध के लिये कूच करें तथा जिन्हें अपने प्राण प्यारे हों वे युद्ध से दूर रहें। अपने राजा का युद्ध-घोष सुनकर सभी अर्कवंशी क्षत्रिय-वीर एवं उनके किशोर, बालक भी युद्ध के लिये तत्पर हो गये तथा अर्कवंशी क्षत्राणियाँ भी अपने शील-धर्म की रक्षा के निमित्त अपने वस्त्रों में कटार छिपाकर जौहर-व्रत को तैयार हो गयीं।

लोहगाँजर के मैदान में दोनों सेनाओं का आमना-सामना होते ही अत्यन्त घमासान युद्ध प्रारम्भ हो गया। अर्कवंशी क्षत्रिय सेना ने असंख्य तुर्क़ सैनिकों को मौत के घाट उतार

दिया, जिसमें सैय्यद मख़दूम के तीन बेटे भी शामिल थे। उसमें से एक बेटे की मज़ार काकोरी में, दूसरे की लखनऊ में तथा तीसरे बेटे की मज़ार सण्डीला के मोहल्ला मण्डई में आज भी बनी हुयी है। टिड्डी दल की तरह तुर्क़ सेना जितनी मारी जाती उतनी ही फिर सामने आ जाती थी। कई दिनों तक यह युद्ध चलता रहा। इसके बाद भी जब तुर्क़ सेना सण्डीला पर कब्ज़ा नहीं कर सकी, तब तुर्कों ने पिण्डारी-युद्ध पद्धति से अचानक शीतलपुर (सण्डीला) नरेश और उनकी सेना को घेरकर चौतरफा हमला शुरू कर दिया। फिर भी अर्कवंशी वीर शिरोमणी दुश्मन से लोहा लेता रहा और अन्त में असंख्य घाव झेलते हुये वीरगति को प्राप्त हो गया। अपने राजा के वीरगति को प्राप्त होने के बाद तमाम अर्कवंशी क्षत्रिय सैनिक भी शाका युद्ध करते हुये वीरगति को प्राप्त हुये। राजा के नेतृत्व वाली अर्कवंशी सेना के परास्त होने के बाद भी तुर्क़-सेना कई दिनों तक सण्डीला में कत्लेआम और लूटपाट करती रही तथा कमज़ोर और निर्दोष प्रजा पर जुल्म ढाती रही। बहुत से अर्कवंशियों को जबरन मुसलमान बनाया गया तथा जिन्होंने धर्म-परिवर्तन स्वीकार नहीं किया, उन्हें कत्ल कर दिया गया। कुछ अर्कवंशी जान बचाकर इधर-उधर भाग निकले तथा कई आसपास छिपकर अपने राज्य को पुनः प्राप्त करने का प्रयास करते रहे। अवध गजेटियर पृ. 301 पर लिखता है-

"To this day the Arakhs of Utraula, on the Rapti, 120 miles away to east in Gonda recall their lost domains in Sandila."

अनुवाद-गोंडा से 120 मील पूर्व राप्ती (नदी) पर स्थित उतरौला के अर्कवंशी आज भी अपने खोये राज्य सण्डीला को याद करते हैं।

अर्कवंशी क्षत्रियों के शौर्य की चर्चा अवध गजेटियर दबे शब्दों में करता है। पृ. 301 पर गजेटियर लिखता है-

"How long or how fiercely the Arakhs resisted we know not. Only the issue of the contest has been remembered."

अनुवाद-कितने समय तक और कितनी वीरता से अर्कवंशी लड़े, यह पता लगाना मुश्किल है। सिर्फ विवाद का मुद्दा याद रखा गया है।

कहावत है कि इतिहास सिर्फ विजेताओं का होता है। यही बात सण्डीला के इतिहास पर भी लागू की गयी। एक ओर जहाँ विजयी सैय्यदों के अगुवा को 'काफ़िरों' (अर्कवंशियों) को हराने वाले 'संत' की उपाधि दी गयी, वहीं पराजित हुये अर्कवंशी क्षत्रियों की वीरता एवं त्याग आज किसी को भी याद नहीं है, ये कैसी विडम्बना है? क्या एक महान देश में वीरों के साथ ऐसा ही व्यवहार किया जाना चाहिये?

सण्डीला-फ़तह फ़िरोज़शाह के लिये कितनी महत्त्वपूर्ण थी, इसकी पुष्टि इसी बात से

हो जाती है कि सैयूयदों की पीठ ठोंकने के लिये फ़िरोज़शाह स्वयं सन् 1374 ई. में दोबारा सण्डीला आया था।

अवध गजेटियर भी पृष्ठ 301 पर लिखता है-

"Sandila was their next aquisition of importance in this part of the country."

अनुवाद-(बिलग्राम के बाद) सण्डीला विजय उनकी (सैयूयदों की) इस प्रान्त में दूसरी महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी।

परन्तु बिलग्राम विजय (1220 ई.) और सण्डीला विजय (1370 ई.) के बीच 150 वर्षों का फ़ासला था, जो कि अर्कवंशी राज्य सण्डीला की तत्कालीन शक्ति को बयान करने के लिये काफी है।

सैयूयदों को पता था कि हार के बावजूद अर्कवंशी क्षत्रिय चुप बैठने वाले नहीं हैं और अपने राज्य को पुनः प्राप्त करने का प्रयास अवश्य करेंगे। इस प्रकार की किसी भी सम्भावना को दूर करने हेतु अनेक उपक्रम किये गये। अवध गजेटियर पृ. 301 पर लिखता है-

"The frontiers of the empire were secured (1375 A.D.) by placing them under the charge of great and trusty amirs."

अनुवाद-(सण्डीला) राज्य की सीमाओं को सुरक्षित करने हेतु उन्हें शक्तिशाली और विश्वस्त अमीरों (सामन्तों) के संरक्षण में दे दिया गया (सन् 1375 ई.)।

गजेटियर आगे लिखता है -

"These nobles showed no laxity in putting down the plots of the infidels."

अनुवाद-इन सामन्तों ने काफ़िरों (अर्कवंशियों) की योजनाओं को नाकाम करने में कोई लापरवाही नहीं बरती।

इससे ये स्पष्ट हो जाता है कि सण्डीला राज्य हार जाने के बाद भी कई वर्षों तक अर्कवंशी क्षत्रिय उसे पुनः प्राप्त करने का प्रयास करते रहे, परन्तु शक्तिशाली सल्तनत के सामने छिटपुट प्रयास कहाँ तक सफल होते। अन्त में हार मानकर अर्कवंशी क्षत्रिय इधर-उधर बस गये।

लोहगाँजर के युद्ध के बाद अर्कवंशी क्षत्रियों में ऐसा कोई भी प्रभावशाली व्यक्तित्व नहीं उभर सका जो सण्डीला में अपने खोये हुये मान-सम्मान और राज्य को पुनः स्थापित कर सकता। इस प्रकार अब से लगभग 630 वर्ष पूर्व सूर्यपुत्र अर्कवंशी क्षत्रियों के शक्तिशाली सण्डीला राज्य का सूर्यास्त हो गया।

इस युद्ध के बाद तुर्क-सेना ने अर्कवंशी क्षत्रियों पर घोर अत्याचार किये। न जाने कितने मारे गये और जाने कितनों का धर्म भ्रष्ट किया गया। ज्यादातर लोगों ने, धर्म व वंश रक्षार्थ, वहाँ से पलायन करके विभिन्न सुरक्षित जंगलों में तथा अन्य राज्यों में शरण ले ली। जो राजवंश कल तक शौर्यवान एवं शक्तिशाली था, वही दर-दर की ठोकरें खाने को विवश हो गया। किसी भी राजपरिवार के नष्ट होने पर भी वह वंश जीवित रहता है। आज भी सण्डीला क्षेत्र में बहुत से अर्कवंशी क्षत्रिय बसे हुये हैं और अपनी जातीय गौरवगाथा को सुरक्षित रखे हुये हैं।

मलिहाबाद राज्य

राजा सल्हीय सिंह के समय में मलिहाबाद सण्डीला राज्य का हिस्सा था, तथा सण्डीला राज्य की तरह ही उसे सशक्त बनाने में मल्हीय सिंह का बहुत बड़ा हाथ था। संयुक्त प्रान्त (आगरा-अवध) हरदोई गजेटियर (XLI, 1904) पृ. 128 पर लिखता है -

"Sandila and part of Kalyanmal, which was territory of the Arakhs, who also held the Malihabad pargana of Lucknow."

अनुवाद-सण्डीला और कल्यानमल का एक भाग, अर्कवंशियों के राज्य का हिस्सा था, तथा लखनऊ के मलिहाबाद परगना पर भी उनका कब्जा था।

मल्हीय सिंह जब वयस्क हुये तो राजा सल्हीय सिंह ने उनको सण्डीला राज्य के तहत मलिहाबाद क्षेत्र के प्रशासन का जिम्मा सौंप दिया। मल्हीय सिंह ने यहाँ आकर एक नगर की स्थापना की जिसे मल्हीयपुर (तथा बाद में मलिहाबाद) कहा गया। उनके कुशल प्रशासन के चलते मलिहाबाद अत्यन्त शक्तिशाली हो गया था। राजा मल्हीय सिंह (मलहचंद) के बाद उनके वंशजों ने मलिहाबाद को सण्डीला राज्य से पृथक कर एक स्वतंत्र राज्य के रूप में स्थापित कर दिया। यह राज्य काकोरी और बिजनौर के दक्षिण में सई नदी के बायें किनारे सरसांडी तक फैला हुआ था। अर्कवंशी शासनकाल में मलिहाबाद काफी महत्त्वपूर्ण और शक्तिशाली राज्य बन गया था। इसका उल्लेख अवध गजेटियर भी करता है। लिखा है-

"Even under the rule of this tribe it must have been a place of considerable importance."

अनुवाद-इस जाति के शासनकाल में यह (मलिहाबाद) एक बहुत महत्वपूर्ण जगह रही होगी।

संयुक्त प्रान्त (आगरा-अवध) गजेटियर भी पृ. 354 पर अर्कवंशियों के शक्तिशाली मलिहाबाद राज्य का जिक्र करता है-

"....Arakhs seem to have been in strength in Malihabad, and to have stretched south to Kakori and Bijnaur, and along the left bank of Sai to Sissandi."

अनुवाद- ज्ञात होता है कि मलिहाबाद में अर्कवंशी बहुत शक्तिशाली थे, तथा उनका प्रभुत्व दक्षिण में काकोरी और बिजनौर और सई नदी के बायें किनारे से सिसांडी तक फैल गया था।

अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि सण्डीला राज्य अलग होने पर भी मलिहाबाद राज्य की शक्ति कायम रही तथा उसे एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ।

मलिहाबाद राज्य का पतन- सण्डीला राज्य के पतन के बावजूद भी कई वर्षों तक मलिहाबाद राज्य की शक्ति अक्षुण रही। मलिहाबाद के शक्तिशाली अर्कवंशियों और सण्डीला के सैयुयदों के बीच अक्सर सैन्य झड़पें होती रहती थीं। सैयुयदों की नजरें मलिहाबाद राज्य पर गड़ी थीं किन्तु तैमूरलंग (सन् 1398 ई.) के दिल्ली आक्रमण एवं तुगलक वंश के पतन के कारण वे (सैयुयद) कमजोर पड़ गये थे, इसलिये अर्कवंशियों से दोबारा टकराने की उनकी हिम्मत न हुयी। यही कारण था कि सण्डीला पतन के बाद भी सौ वर्षों तक मलिहाबाद पर अर्कवंशी क्षत्रियों का कब्जा रहा, परन्तु इस काल में उनकी शक्ति धीरे-धीरे कम होने लगी थी।

सन् 1470 ई. के लगभग अर्गल राज्य से निष्कासित देवराय व नयाराना नामक दो गौतम क्षत्रिय भाइयों ने अपने कुछ साथियों के साथ अर्कवंशी क्षत्रियों द्वारा शासित मलिहाबाद राज्य के दांतली नगर में शरण ली। मलिहाबाद प्रवास के दौरान गौतम क्षत्रिय भाइयों ने अर्कवंशी राज्य के विरुद्ध साजिश रचनी प्रारम्भ कर दी, और धीरे-धीरे तुर्कों से मिलकर उन्होंने मलिहाबाद राज्य के 12 महत्त्वपूर्ण गाँव हथिया लिये। इस संबंध में लखनऊ गजेटियर पृ. 140 पर लिखता है-

"About 1470 A.D., a tribe of Gautams came from Argal and settled in Datli of Malihabad, after dispossessing the Arakhs gradually gaining for themselves twelve villages."

अनुवाद-सन् 1470 ई. के लगभग गौतमों की एक जाति अर्गल से आयी और मलिहाबाद के दांतली नगर में बस गयी, उसने धीरे-धीरे अर्कवंशियों को अधिकार रहित करके उनके 12 गाँव हथिया लिये।

पहले से ही कमज़ोर पड़ चुके अर्कवंशी क्षत्रियों के लिये अपने राज्य के 12 महत्त्वपूर्ण गाँवों का हाथ से निकल जाना काफी नुकसानदायक सिद्ध हुआ, तथा धीरे-धीरे पूरा मलिहाबाद राज्य उनके हाथ से निकल गया। कुछ अर्से बाद ही पठानों ने गौतमों से भी वह इलाका छीन लिया और फिर मलिहाबाद राज्य पर भी अपना आधिपत्य कायम कर

किया। इस संबंध में लखनऊ गजेटियर पृ. 242 पर लिखता है-

"In the like manner the Gautams of Datli in the south of pargana have lost almost all their estates to the Pathans. They are said to have come some four hundred years ago under Deo Rai and Naya Rana from Argal, and to have ejected the Arakhs from twelve villages."

अनुवाद-इसी प्रकार दक्षिण में दांतली के गौतमों से पठानों ने उनकी सारी जागीरें छीन लीं। ज्ञात होता है कि वे (गौतम) 400 वर्ष पूर्व (1470 ई. में) देवराय व नया राना के नेतृत्व में अर्गल से आये थे तथा उन्होंने अर्कवंशियों से 12 गाँव छीन लिये थे।

इस प्रकार अर्कवंशी क्षत्रियों का मलिहाबाद राज्य पर से सदैव के लिये अधिकार छिन गया और इस शक्तिशाली राजवंश के क्षत्रिय श्रीहीन हो गये। सांडी (हरदोई) में अर्कवंशी क्षत्रियों का एक विशाल किला बड़े डीह के रूप में आज भी पड़ा हुआ है। इसके अलावा अर्कवंशी क्षत्रियों द्वारा निर्मित गढ़ों के भग्नावशेष धरधरा, दांतली, गढ़ी संजरखां, कहला, गढ़ी जिन्दौर (रहीमाबाद), तरौना, सहिजना, सामदखेड़ा, मुसलेवां आदि ग्रामों में आज भी टीलों के रूप में विद्यमान हैं तथा अर्कवंशी वीरों की शौर्य गाथा सुनाते प्रतीत होते हैं।

दोआबा साम्राज्य

राशिमाला हिन्दी प्रथम भाग-पूर्वार्ध पेज 29 के अनुसार अर्कवंशी (सूर्यवंशी) राजा कनकसेन के वंशज विदर्भ राज्य में वल्लभी नगर की स्थापना करके वल्लभीपति कहलाये और 'बालार्क' उपाधि धारण की। कनकसेन के वंशज शिलादित्य के काल में पार्थियनों के आक्रमण से वल्लभी राज्य नष्ट हो गया तथा उनका कुटुम्ब इधर-उधर बिखर गया।

इसी वंश के वंशधर दो भाई दलपतसेन और महिपतिसेन भी पहले बालार्क फिर अर्क कहलाये। ये दोनों भाई वल्लभी राज्य से निकलकर कान्यकुब्ज राज्य पहुँचे। कुछ वर्षों तक वहाँ प्रवास के दौरान दोनों भाइयों ने अपनी सैनिक शक्ति को एकत्र करके, कान्यकुब्ज राज्य से पूर्व की ओर, छोटे-छोटे स्वतंत्र सामन्तों और राजाओं को पराजित कर सम्पूर्ण दोआबे में अपना आधिपत्य कायम किया। इन दोनों ने अपने राज्य को दो भागों में बाँट दिया। एक भाग वर्तमान खागा से लेकर सुजातपुर-बम्हरौली, सिराथू, अर्कनगर*, कड़ा, सेलरहा, कोरौ, हटवा, क्योहर से जमुना तट और संगम तट तक फैला हुआ था, तथा उसकी राजधानी कुकरा-कुकरी के नाम से जानी जाती थी। दूसरा राज्य कानपुर जिला

*खागा और सिराथू के बीच में पड़ने वाले प्राचीन कस्बे 'अर्कनगर' (अरकनगर) का नाम बदलकर 'अरवनगर' कर दिया गया है।

अन्तर्गत साढ़ सलेमपुर से लेकर कोड़ा, जहानाबाद, अर्गल, रेह, ललौली (अर्कौली), पनई इनायतपुर, मऊ, थरियाँव, कोराई, सेनीपुर नलोनी, बेरागढ़िवा, दीदाशाह (अन्सर गढ़), कुशुम्भरी आदि तक फैला था, जिसकी राजधानी अयाह राज्य में थी।

खागा राज्य- कालान्तर में दलपतसेन के वंशज खड़गसेन कुकरा-कुकरी राज्य के अधिपति हुये। खड़गसेन ने एक नगर की स्थापना की जो कि 'खागा' नाम से प्रसिद्ध हुआ। खड़गसेन तथा उनके वंशजों का राज्य अत्यन्त शक्तिशाली था। फतेहपुर से निकलने वाले समाचार पत्र 'दैनिक संवाद गौरव' के, सन् 1991 के विशेषांक में प्रकाशित, एक लेख 'विकास के आइने में खागा का अतीत' में लेखक श्री रविकुमार तिवारी लिखते हैं-

"नगर के इतिहास पर एक नजर डाली जाए तो पता चलता है कि यहाँ पहले आरख जाति के लोग निवास करते थे। अरखों के अगुवा खड़गसेन ने ही इस बस्ती का नामकरण 'खागा' किया था।"

लेख में आगे लिखा है-

"कहते हैं इसी (अरख) जाति के लोगों ने ऐतिहासिक दशाश्वमेघ यज्ञ रचाया था। खागा के आस-पास कुकरा-कुकरी और कोट गाँव (में) इस जाति के अब भी प्रतीक हैं।"

अर्कवंशी क्षत्रियों द्वारा प्रतीकात्मक दशाश्वमेघ यज्ञ का कराया जाना इस बात की ओर संकेत देता है कि उस काल में उनकी प्रभुसत्ता को ललकारने वाला कोई नहीं था, तथा उनका राज्य अत्यन्त शक्तिशाली था।

अयाह राज्य- राजा महिपतसेन के उत्तराधिकारी कीरतसेन अयाह राज्य के अधिपति हुये। आपने साही रिसाला के लिये एक नगर बसाया, जो कि अयाह से कुछ फासले पर स्थित है और उसे वर्तमान में शाह नाम से जाना जाता है। कालान्तर में अयाह राज्य के उत्तराधिकारी एवं अर्कवंश के अंतिम शासक सत्यसेन पदासीन हुये, जिन्हें कुछ इतिहास-वेत्ताओं ने सतानन्द नाम दिया है।

अयाह राज्य के बारे में फतेहपुर का "भूवृत 1884 दफा 9 जिक्रे देहात" लिखता है कि अर्कवंशी राजा के अधीन 8 किले थे, जो अयाह शाह स्टेट के छोटे-छोटे किले थे। इन सभी किलों में अर्कवंशी क्षत्रिय रहते थे। अर्कवंशी अयाह राज्य की पुष्टि फतेहपुर गजेटियर भी करता है। संयुक्त प्रान्त (आगरा-अवध) गजेटियर (सं. XX) पृ. 171 पर लिखता है-

"Aya is a decaying place and at the present time possesses no importance. It contains the remains of an old fort, locally attributed to the Arakhs, who are popularly supposed to have controlled this part of the district at one period. To the south of the fort, which lies to

the east of the village, is an old 'khera' or mound, and in the village itself are numerous remains of great antiquity, in the shape of stone figures and columns, such as are to be found in Asothar, Saton and other old sites."

अनुवाद-अयाह भग्न अवस्था में है, तथा वर्तमान में यह जगह महत्त्वहीन है। यहाँ पर अर्कवंशियों, जिनका किसी समय पर यहाँ प्रभुत्व था, द्वारा निर्मित एक पुराने किले के खंडहर विद्यमान हैं। किला, जो कि अयाह के पूर्व में है, के दक्षिण में एक पुराना 'खेड़ा' है, और अयाह में भी पत्थर की मूर्तियों और खम्भों के रूप में कई प्राचीन अवशेष मिलते हैं। इसी प्रकार के अवशेष असोथर, सातों तथा कई अन्य प्राचीन स्थलों पर भी पाये गये हैं।

इलाहाबाद- पुराने समय में इलाहाबाद का भी काफी बड़ा हिस्सा अर्कवंशी क्षत्रियों द्वारा शासित था। इस संबंध में संयुक्त प्रान्त (आगरा-अवध) इलाहाबाद जिला गजेटियर (Vol.-23, 1911) में एक उल्लेख प्राप्त होता है। गजेटियर के पृ. 93 पर लिखा है-

"Arakhs...are said to have held sway over a large tract of country in former days."

अनुवाद-ज्ञात होता है कि पुराने समय में इस क्षेत्र के काफी बड़े हिस्से पर अर्कवंशियों का अधिकार था।

इलाहाबाद के कई क्षेत्रों से सूर्य पूजा के भी प्रमाण प्राप्त होते हैं। जिस समय यहाँ पर अर्कवंशी क्षत्रियों का प्रभुत्व था, उसी काल में यहाँ सूर्यदेव की उपासना को भी महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। अर्कवंशी शासन के समाप्त होते ही यहाँ से सूर्यदेव की पूजा भी विलुप्त हो गयी। इलाहाबाद के सिंगरूर क्षेत्र में प्राचीनकालीन सूर्य पूजा का उल्लेख करते हुये संयुक्त प्रान्त (आगरा-अवध) इलाहाबाद जिला गजेटियर (1911) पृ. 300 पर लिखता है-

"It would appear that Singraur was once a centre of the ancient sun-worship, for another mound about half a mile to the north is known as the Surya Bhita and is thickly strewn with broken bricks.....(There is) a small figure of the sun on a four wheeled chariot drawn by seven horses."

अनुवाद-प्रतीत होता है कि किसी काल में सिंगरूर प्राचीन सूर्य उपासना का केन्द्र था, क्योंकि यहाँ से लगभग आधा मील उत्तर दिशा में 'सूर्य-भीत' नामक एक पुराना टीला स्थित है, जिसके चारों तरफ बहुत सी टूटी हुयी ईंटे बिखरी पड़ी हुयी है।...(यहाँ पर)

सूर्य की एक छोटी प्रतिमा है, जो कि सात घोड़ों द्वारा खींचे जाने वाले चार पहिये के रथ पर सवार है।

गजेटियर उसी पेज पर आगे लिखता है-

"There are no surviving traces of sun worship, but a large fair in the honour of Debi takes place in the month of Asarh and Sawan."

अनुवाद-वर्तमान समय में तो यहाँ पर सूर्य पूजा के कोई भी संकेत प्राप्त नहीं होते, किन्तु आषाढ़ और सावन के महीने में देवी के सम्मान में यहाँ एक विशाल मेले का आयोजन अवश्य होता है।

अर्कवंशी राजाओं की शौर्य गाथायें सुनाते किले, खंडहरों के रूप में आज भी इस प्रान्त के विभिन्न हिस्सों में मौजूद हैं।

कानपुर- विभिन्न स्रोतों द्वारा कानपुर में भी अर्कवंशी क्षत्रियों के शासन की पुष्टि होती है। मि.एटकिसन, "Statistical description in Historical Accounts of North Western Provinces of India ", के अनुसार-

"In the east of the district (Kanpur) are pargana Sarh Salempur (Narval). The old inhabitants and occupants of the country are called Arakhs."

अनुवाद-जिला कानपुर के पूर्व में साढ़ सलेमपुर (नरवल) परगना है। इस प्रान्त के प्राचीन निवासी एवं मालिक अर्कवंशी हैं।

कानपुर जिला गजेटियर (पृ. 117) के अनुसार-

"The Arakhs were traditionally the earliest inhabitants of Narwal and other parts."

अनुवाद-नरवल तथा यहाँ (कानपुर) के दूसरे हिस्सों के प्राचीन बाशिंदे अर्कवंशी थे।

नरवल क्षेत्र में स्थानीय चौहानों के आधिपत्य में कुछ पुरानी गढ़ियों के खंडहर मौजूद हैं, जिन्हें खंगारन गढ़ी कहा जाता है। स्थानीय चौहानों के अनुसार अर्कवंशी खांगरों ने ही सर्वप्रथम नरवल में राज्य स्थापित किया था। इसके पश्चात् इनकी एक शाखा हमीरपुर और कुंडार की ओर चली गयी।

पाण्डवपुरी या पडरी राज्य

उन्नाव जनपद के अन्तर्गत वर्तमान पड़री, तिवारीपुर और नेवन्ना के सम्पूर्ण क्षेत्र का प्राचीन नाम पाण्डवपुरी था, जिसे किसी पाण्डव वंशी राजा द्वारा बसाया गया था, जो बाद में पाण्डुरी हुआ और फिर पडरी कहलाया। जिस समय सम्पूर्ण अवध प्रान्त में अर्कवंशी क्षत्रियों का शासन था उसी समय उन्हीं के वंशधर अर्कवंशी राजा पडरी में भी शासन करते

थे। ये वही 11वीं और 12वीं सदी का काल था जब ब्रम्हाइच से लेकर अवध और दोआब के बहुत बड़े भू-भाग पर अर्कवंशी क्षत्रियों का आधिपत्य था।

दोआबा साम्राज्य का अन्त

तुर्कों ने जब भारत में अपना राज्य प्रसार प्रारम्भ किया तो उनका टकराव अर्कवंशी क्षत्रियों से भी हुआ। तुर्कों से होने वाले युद्धों में अर्कवंशी क्षत्रियों की सैनिक शक्ति बहुत क्षीण हो गयी थी। इसके साथ ही अर्कवंशी क्षत्रियों का पराभव प्रारम्भ हुआ और धीरे-धीरे वे पतन की ओर बढ़ने लगे। इन युद्धों के दौरान मिश्र ब्राह्मणों ने तुर्कों की मदद से अर्कवंशी क्षत्रियों के मुख्य गढ़ अयाह-शाह को धोखे से विध्वंस करवा दिया। दूसरी तरफ सिंगरौरों ने इन्हें कमज़ोर पड़ता देख इनकी अन्य गढ़ियाँ जैसे खागा, कुकरा-कुकरी, गढ़ा कोट आदि हथिया लीं। मौके का फायदा उठाकर इटावा क्षेत्र के शक्तिशाली सामन्त जगन ब्राह्मण ने (अपने सजातीय कान्यकुब्जों के विरोध के बावजूद) कानपुर जिला अन्तर्गत अर्कवंशी क्षत्रियों के गढ़ सलेमपुर-नरवल पर धोखे से अपना आधिपत्य कायम कर लिया। अर्कवंशियों को सत्ताच्युत करने के बाद इन पर अनेक प्रकार के जुल्म ढाये गये। ब्राह्मणों और कठमुल्लाओं की मिली-जुली साजिश के तहत इन्हें सामाजिक रूप से प्रताड़ित करने के लिये तरह-तरह के हथकंडे अपनाये गये।

अर्कवंशी राज्यों का पतन

अर्कवंशी क्षत्रिय उत्तर भारत के कई क्षेत्रों के प्राचीन शासक थे। स्थानीय क्षत्रियों के साथ टकराव के कारण उनके राज्य बनते बिगड़ते रहते थे। प्राचीनकाल से लेकर राजपूतों के उद्भव और तुर्कों के आगमन तक प्रत्येक काल में, उत्तर भारत में कहीं न कहीं अर्कवंशी क्षत्रियों का शासन अवश्य रहा। राजा तिलोकचंद एवं उनके वंशजों के समय में अर्कवंशी क्षत्रियों की प्रभुसत्ता अपनी चरम सीमा पर थी। तदोपरान्त भी कई वर्षों तक उनके राज्य स्थापित रहे, परन्तु राजपूतों एवं तुर्कों के साथ त्रिपक्षीय संघर्षों के कारण धीरे-धीरे उनकी शक्ति क्षीण होने लगी थी।

कहावत है कि एक जंगल में दो शेर नहीं रह सकते। राजपूतों ने जब अपना राज्य प्रसार प्रारम्भ किया तो उनका सामना देश में वर्षों से राज करने वाले प्राचीन क्षत्रिय वंशों से हुआ, जिसमें अर्कवंश भी शामिल था। चूँकि, नव-क्षत्रियों (राजपूतों) को समाज में प्रतिष्ठित एवं स्थापित करने में पुरोहित-वर्ग का पूरा हाथ था, अतः प्रभुसत्ता की लड़ाई में पुरोहितों की पूरी सहानुभूति एवं सहयोग, प्राचीन क्षत्रिय वंशों के बजाए, सदैव नव-क्षत्रियों के साथ रहा। इतना ही नहीं, तुर्कों के आगमन के बाद भी समाज के ठेकेदारों ने अपने देशवासी, प्राचीन क्षत्रियों का साथ देने के बजाए विदेशियों का साथ दिया और झूठी अफवाहें फैलाकर, साजिशन, प्राचीन क्षत्रियों के राज्य नष्ट करवा दिये।

अर्कवंशी क्षत्रियों के अदम्य साहस और वीरता के सम्मुख बड़ी से बड़ी सेना भी टिक नहीं पाती थी। यही कारण था कि जब भी इन पर हमले किये जाते थे तो छिपकर या धोखे से ही होते थे। अर्कवंशी वीरों की स्पष्टवादिता एवं उनके द्वारा, समाज में व्याप्त कुरीतियों का विरोध करने के कारण ही कुछ छद्म इतिहासकारों ने इस वंश के इतिहास में जान-बूझकर विकृतियां पैदा कर दीं। इतना ही नहीं, अर्कवंशी राज्यों से संबंधित विवरणों को भी इतिहास के पन्नों से विलुप्त करने का प्रयास किया गया।

तुर्कों ने जब अपने साम्राज्य का विस्तार शुरू किया तो वे भारत के छोटे-बड़े सभी राज्यों को रौंदते चले गये। धर्म के नाम पर ही सही, तुर्कों व अन्य मुसलमान आक्रमणकारियों में संगठन की भावना अत्यन्त प्रबल थी, जबकि भारत के क्षत्रिय वंश छोटे-छोटे मुद्दों पर बँटे हुये थे। यही कारण था कि तुर्कों को भारत में अपने पाँव पसारने में कोई विशेष कठिनाई नहीं हुयी। नव-क्षत्रियों के समान ही अर्कवंशी क्षत्रियों का भी टकराव तुर्कों से हुआ, किन्तु जहाँ नव-क्षत्रियों ने तुर्कों की अधीनता स्वीकार कर ली तथा अपनी बहू-बेटियाँ तक मुसलमानों को सौंप दीं, वहीं अर्कवंशी क्षत्रिय मिट गये परन्तु विदेशियों के साथ कभी समझौता नहीं किया। अपने राज्य और अपनी जागीरों को बचाने के लिये अर्कवंशी क्षत्रियों ने कभी भी अपनी 'थुक्का फ़ज़ीती'* नहीं करवायी। यही कारण था कि जहाँ नव-क्षत्रियों का धनबल व राजसत्ता सलामत रही, वहीं अर्कवंशी क्षत्रिय श्रीहीन होकर दर-दर की ठोकरें खाने पर मजबूर हो गये।

भ्रामक किंवदंतियां

अर्कवंशी क्षत्रियों द्वारा शासित अधिकतर राज्यों, जैसे साढ़-सलेमपुर, पडरी, अयाह, कुकरा-कुकरी, खागा, इलाहाबाद, अर्कौना आदि के विषय में अनेक किंवदंतियां सुनने को मिलती हैं। इन किंवदंतियों को एकसाथ रखकर उनका समग्र अवलोकन और विश्लेषण किया जाये तो एक बड़ा ही दिलचस्प तथ्य सामने आता है, और वो ये है कि अधिकतर किंवदंतियां एक ही तरह की कहानी सुनाती प्रतीत होती हैं। सभी किंवदंतियां अर्कवंशी राजाओं को दुर्गुणी एवं व्यसनी दिखाने का प्रयत्न करती हैं। हर कहानी का सार यही है कि फलां राज्य का अर्कवंशी राजा फलां ब्राह्मण युवती पर आसक्त हो गया, तो युवती के बाप ने फलां राजा (जैसे राजा जयचंद, इब्राहिम शारकी, इत्यादि) से शिकायत करके इस

*मध्यकाल में मुस्लिम बादशाह अपने गुलाम हिन्दू जागीरदारों के मुँह में थूककर उनकी वफादारी का इम्तिहान लिया करते थे। इसे 'थुक्का फ़ज़ीती' कहा जाता था। जागीरों के लालच में नव-क्षत्रिय और ब्राह्मण जागीरदार यह सब चुपचाप सहन कर लेते थे, परन्तु वीर अर्कवंशी क्षत्रियों को यह कभी भी स्वीकार न था। हमें गर्व होना चाहिये कि हम 'थुक्का फ़ज़ीती' कराने वालों के वंशज नहीं, बल्कि सच्चे, स्वाभिमानी क्षत्रिय वीरों के कुलज हैं।

अर्कवंशी राजा व उसकी सेना को नशा पिलाकर एवं धोखे से हमला करवाकर नष्ट करवा दिया।

सवाल ये उठता है कि प्रत्येक अर्कवंशी राज्य के पतन से जुड़ी किंवदंती, सिर्फ पात्रों और स्थानों के नामों को छोड़कर, एक ही कहानी क्यों दोहराती है? इस प्रश्न का सीधा सा उत्तर यही है कि ये सभी किंवदंतियां कपोल-कल्पित एवं मनगढ़ंत हैं। इन नाटकीय किंवदंतियों का एक मात्र उद्देश्य था जनमानस के समक्ष अर्कवंश को बदनाम करना, ताकि सत्तालोलुप नव-क्षत्रियों एवं पुरोहितों द्वारा अर्कवंशी राज्यों को धोखे एवं साजिशों के तहत नष्ट करने के अनीतिपूर्ण कार्य को समाज के सामने न्यायसंगत ठहराया जा सके।

पुरोहित-वर्ग द्वारा फर्जी किंवदंतियों की रचना इसलिये की गयी थी ताकि अर्कवंशी राजाओं की छवि धूमिल हो जाये, और जब षड्यंत्रों द्वारा अर्कवंशी राज्य को नष्ट किया जाये तो उस राज्य की प्रजा बाह्य आक्रमणकारियों के विरुद्ध विद्रोह न करे। ऐसा इसलिये आवश्यक था क्योंकि अधिकतर अर्कवंशी राजा कुशल प्रशासक, उदार एवं समतावादी थे, जिससे वे प्रजा में अत्यन्त लोकप्रिय थे। इसके अतिरिक्त अर्कवंशी क्षत्रिय बहुत वीर एवं युद्ध-कला में पारंगत थे, इसलिये उनसे सीधे मुकाबला कर उन्हें जीतना आसान न था। अतः अर्कवंशी राज्यों को छल-छद्मों द्वारा ही हथियाया जा सकता था।

सूचना, ज्ञान एवं संचार के इस आधुनिक युग में भी जब अफवाहें बहुत असरदार साबित हो सकती हैं, तो उस युग की कौन कहे जब अधिकतर जनमानस अशिक्षित एवं संकीर्ण सोच से युक्त था। उस काल में पुरोहित-वर्ग, सही-गलत, जो कुछ भी कहता था, सरल हृदय जनता आँख मूंदकर उस पर यकीन कर लेती थी। यही कारण था कि प्रत्येक अर्कवंशी राज्य के पतन से जुड़ी किंवदंतियों के एक जैसी होने पर भी कभी किसी ने उनकी सत्यता पर संदेह नहीं जताया।

अर्कवंशी क्षत्रिय समाज का अशिक्षित वर्ग आज भी इन किंवदंतियों पर यकीन किये बैठा है, तथा अपने महान पूर्वजों के विषय में गलत धारणा बनाये हुये है। समाज के शिक्षित लोगों को अपने पूर्वजों की छवि खराब करने वाली इन फर्जी किंवदंतियों को सिरे से खारिज करते हुये, ज्ञान की नई रोशनी का संचार करना होगा एवं मानसिक दुर्बलता पैदा करने वाली अवधारणा से छुटकारा पाना होगा। पुरोहित वर्ग एवं असामाजिक तत्वों द्वारा भ्रमित, अंधकार एवं निराशा में भटकने वाले ऐसे देशवासियों को स्वाभिमान एवं आत्म-सम्मान का मन्त्र देते हुए स्वामी विवेकानन्द जी ने कहा है- *"अगर दुनिया में कोई पाप है तो वह है दुर्बलता। हर तरह की दुर्बलता से बचो। दुर्बलता पाप है, दुर्बलता मृत्यु है। जो भी चीज तुम्हें शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक रूप से दुर्बल बनाती है, उसे जहर की तरह तिरस्कृत करो। उसमें कोई जीवन नहीं है। वह सत्य नहीं हो सकती है।"*

उड़ीसा का संक्षिप्त इतिहास

प्राचीनकाल में उड़ीसा को कलिंग देश के नाम से जाना जाता था। ये वही कलिंग था जिसकी विजय के बाद सम्राट अशोक का हृदय परिवर्तन हो गया था, तथा वह बौद्ध धर्मी हो गया था। प्राचीनकाल में खारवेल नामक जैन राजा उड़ीसा का सबसे प्रसिद्ध राजा हुआ। खारवेल वंश के बाद उड़ीसा पर बौद्ध धर्मी राजाओं का शासन रहा। इन राजाओं ने उड़ीसा में बौद्धधर्म का खूब प्रचार प्रसार किया। सातवीं शताब्दी व ग्यारहवीं शताब्दी के बीच उड़ीसा का विस्तृत ऐतिहासिक ब्यौरा प्राप्त नहीं होता है, किन्तु यहाँ के मंदिरों में रखे ताड़पत्र लेखों के अनुसार इस काल में यहाँ केशरी वंश तथा सूर्योपासकों (मुख्यतः अर्क क्षेत्र में) का राज्य रहा।

अर्कक्षेत्र

उड़ीसा के पूर्व में, पुरी के पास, कोण नामक स्थान है। प्राचीनकाल में इस क्षेत्र में अर्क नामधारी सूर्य उपासक क्षत्रियों का बाहुल्य था, तथा इसी कारण से यह स्थान 'अर्कक्षेत्र' कहलाता था। आठवीं शताब्दी से लेकर ग्यारहवीं शताब्दी तक यह क्षेत्र अर्क क्षत्रियों द्वारा शासित रहा। ग्यारहवीं शताब्दी के अन्त में अर्कक्षेत्र सहित सम्पूर्ण उड़ीसा (चोड़) गंगवंश के कब्जे में आ गया। इस वंश के 15 शासकों ने सन् 1435 ई. तक उड़ीसा पर शासन किया। गंगवंश के शासनकाल में अर्कक्षेत्र के सूर्योपासक (अर्क) क्षत्रिय, उड़ीसा राज्य के मंत्री, सेनानायक व अन्य महत्त्वपूर्ण पदों पर आसीन रहे। इन सूर्योपासकों (अर्कों) की प्रबल इच्छा थी कि अर्कक्षेत्र में स्थित पुराने सूर्यमंदिर को भव्य रूप प्रदान किया जाये। अर्कक्षेत्र के सूर्य उपासकों की भावनाओं का आदर करते हुये गंगवंश के उदार शासक नरसिंहदेव-प्रथम (सन् 1238-64 ई.) ने कोण में एक विशाल सूर्यमंदिर का निर्माण करवाया, जिसे 'कोणार्क' मंदिर कहा गया।

बंगाल जिला गजेटियर, पुरी (1908, पृ. 31), के अनुसार-

"...(Gangas) seem to have been catholic in their religious tastes, as the great fane of Jagannath at Puri and the massive sun-temple of Konark were built by them ."

अनुवाद-मालूम होता है कि गंगवंशी धर्म के मामले में काफी उदार थे, क्योंकि पुरी का भव्य जगन्नाथ मंदिर और कोणार्क का विशाल सूर्यमंदिर उन्हीं के द्वारा बनवाया गया था।

कोणार्क सूर्यमंदिर

पूर्वी उड़ीसा में समुद्र-तट के किनारे, पुरी से उत्तर पूर्व में, कोण नामक स्थान पर एक विशाल सूर्य मंदिर स्थित है। इसका निर्माण 13वीं शताब्दी के मध्य में उड़ीसा के गंगवंशी शासक नरसिंहदेव-प्रथम द्वारा कराया गया था। प्राचीनकाल से ही कोण के आसपास का क्षेत्र अर्कक्षेत्र के नाम से जाना जाता था। गंगवंश से पूर्व, वहाँ निवास करने वाले सूर्योपासक 'अर्क' इस क्षेत्र पर शासन करते आये थे। उनके शासनकाल में इस स्थान पर एक छोटे सूर्यमंदिर का निर्माण कराया गया था। अर्कक्षेत्र के पवित्र स्थलों में इस सूर्यमंदिर के अलावा 'अर्कवट' नामक एक विशाल एवं प्राचीन बरगद का पेड़ हुआ करता था। कालान्तर में गंगवंश के शासक नरसिंह देव-प्रथम ने इस क्षेत्र के अर्कों की भावनाओं का आदर करते हुये छोटे सूर्यमंदिर के स्थान पर एक विशाल सूर्यमंदिर का निर्माण करवाया (जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है)। अर्कदेव को समर्पित इस मंदिर को कोणार्क कहा गया।

अर्क देवता को समर्पित कोणार्क मंदिर

पुरी गजेटियर (1908) पृ. 28 पर लिखता है-

"Narsinha-I (1238-64) is known to posterity as the builder of the beautiful temple of Konark, which he dedicated to the sun-god 'Arka' at Kona ."

अनुवाद-आगामी पीढ़ियां नरसिंह-1 (1238-64) को कोणार्क के शानदार मंदिर के निर्माता के रूप में जानती हैं। इस मंदिर को उन्होंने कोण के अर्क देवता को समर्पित किया था।

गजेटियर आगे पृ. 271 पर भी लिखता है-

"It was dedicated to the sun-god (Arka), and the tract in which it lies is called in Sanskrit the Arkakshetra."

अनुवाद-इसे (कोणार्क मंदिर को) अर्कदेव को समर्पित किया गया था, और जिस क्षेत्र में यह स्थित है उसे संस्कृत में 'अर्कक्षेत्र' कहा जाता है।

यूँ तो कोणार्क मंदिर से जुड़ी अनेक मान्यतायें और कहावतें हैं, परन्तु एक कहावत बड़ी दिलचस्प तथा लोकप्रिय है और अक्सर सुनने में आती है। इसके अनुसार कोणार्क मंदिर के निर्माण में 16 वर्ष लगे थे तथा 1200 आदमियों ने इसमें अपना योगदान दिया था। कहा जाता है कि मंदिर निर्माण से पूर्व सिवई नामक एक निरीक्षण अधिकारी को दर्शन देकर देवी रामचन्दी ने कहा था कि सूर्य-मंदिर का निर्माण तभी पूर्ण होगा जब कोई सच्चा सूर्योपासक (अर्क) मंदिर के अन्तिम कलश को निर्मित करेगा। मंदिर के कारीगरों के मुखिया वशुवेणार्क (जो कि अर्क था) की देख-रेख में निर्माण कार्य लगभग 16 वर्षों से चल रहा था, परन्तु फिर भी मन्दिर निर्माण का कार्य पूर्ण नहीं हो पा रहा था। वशुवेणार्क ने यह संकल्प लिया था कि जब तक वह अर्क-मंदिर का निर्माण कार्य सम्पन्न नहीं करवा देगा तब तक वह अपने घर नहीं जाएगा। इसी कारण 16 वर्षों से वह अपने घर नहीं गया था। काफी अर्से से वशुवेणार्क की कोई ख़बर न मिलने पर उसकी चिंतित पत्नी ने अपने किशोरवय बेटे अर्जवार्क को अपने पिता को ढूंढ़ने हेतु कोण भेजा। निशानी के तौर पर अर्जवार्क की माँ ने उसे 'बर्कौली' नामक वृक्ष की टहनी दी थी, जिसके सहारे उसके पिता ने उसे पहचान लिया। युवक ने भी अर्क-मंदिर के निर्माण में अपना योगदान देने की इच्छा जाहिर की और पिता की आज्ञा मिलने पर निर्माण कार्य में जुट गया। उस युवक पर देवी का वरदान था, इसलिये उसने एक रात में ही मंदिर के निर्माण कार्य को अन्तिम कलश तक पहुँचा दिया। प्रातः जब दूसरे कारीगरों ने यह देखा तो उन्हें क्रोध आ गया, क्योंकि उनके लिये कोई काम नहीं बचा था। उन्होंने वशुवेणार्क (लड़के के पिता) से इसकी शिकायत की तो वशुवेणार्क ने उनके दबाव में आकर मंदिर के शिखर पर कार्य सम्पन्न कर रहे अर्जवार्क को नीचे फेंक दिया, जिससे नवयुवक के प्राण-पखेरू उड़ गये। कहते हैं कि तभी से मंदिर को देवी का श्राप लग गया तथा मंदिर का अन्तिम कलश कभी पूर्ण नहीं हो पाया। इस कहावत का जिक्र पुरी गजेटियर (1908) भी पृ. 277 पर करता है-

कोणार्क मंदिर चक्र
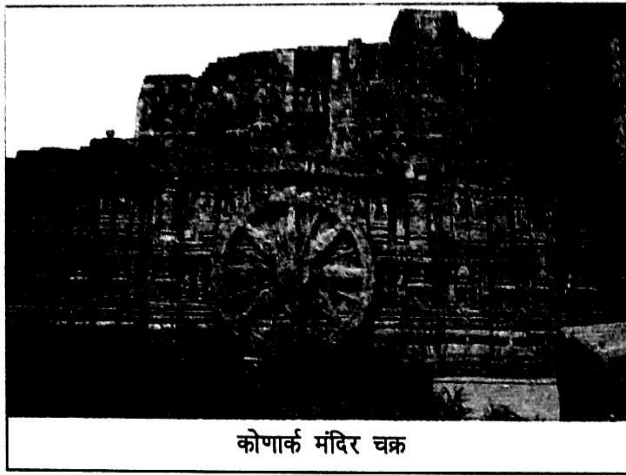
"...The father then sorrowfully declared his preference for his fellow-workers, climbed to the top, where his son was still working, and hurled him down to the pavement below. But a curse fell on the work, and the porch was left unfinished up to the final vase."

अनुवाद-पिता (वशुवेणार्क) ने तब दुःखी मन से अपने सहयोगियों का पक्ष लेना मंजूर किया और ऊपर, जहाँ उसका बेटा अभी भी कार्यरत था, जाकर अपने बेटे को नीचे ज़मीन पर फेंक दिया। लेकिन (मंदिर के निर्माण) कार्य को श्राप लग गया, तथा मंदिर का ओसारा अन्तिम कलश तक अधूरा रह गया।

इस किंवदंती में कितनी सत्यता है ये पता लगाना मुश्किल है, परन्तु एक बात निश्चित तौर पर कही जा सकती है कि कोणार्क सूर्य मंदिर का निर्माण भले ही गंगवंशियों द्वारा करवाया गया था, लेकिन सूर्य उपासकों (अर्कों) ने इसके निर्माण में अपने योगदान एवं बलिदान द्वारा एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

उड़ीसा में सूर्यवंशी शासन

15वीं शताब्दी में गंगवंश के अन्तिम शासक की मृत्यु के पश्चात्, उसके मंत्री कपिलेन्द्रदेव ने वहाँ की सत्ता अपने हाथों में ले ली। कपिलेन्द्रदेव अर्कक्षेत्र का रहने वाला सूर्योपासक (अर्क) क्षत्रिय था। पुरी गजेटियर (1908) इसका उल्लेख करते हुये पृ. 29 पर लिखता है-

"On the death of the last Ganga king, his minister, Kapilendra Deva, seized the throne and founded the Suryavansa or solar dynasty (1435)."

अनुवाद-गंगवंश के अन्तिम शासक की मृत्यु के बाद उसके मंत्री कपिलेन्द्रदेव ने सिंहासन पर अपना अधिकार कर लिया तथा सूर्यवंशी शासन की स्थापना की (1435)।

स्वयं सूर्यवंशी होते हुये भी कपिलेन्द्रदेव दूसरे मतों का भी आदर करता था। उसने पुरी के जगन्नाथ मंदिर को कई बार अनुदान दिये थे। कपिलेन्द्रदेव के बाद पुरुषोत्तमदेव (सन् 1470 ई.) तथा प्रतापरुद्रदेव (1497 ई.) ने वहाँ शासन किया। प्रतापरुद्रदेव सूर्यवंश का अन्तिम शासक था। उसके शासनकाल में वैष्णव धर्म के महान प्रवर्तक चैतन्य महाप्रभु ने उड़ीसा में प्रवास किया, तथा उन्होंने प्रतापरुद्रदेव एवं अन्य सूर्यवंशियों को वैष्णव धर्म में परिवर्तित करवा दिया। पुरी गजेटियर (1908) पृ. 31 पर लिखता है-

"The reign of Prataprudradeva, the last of this (solar) line, though disastrous to temporal fortunes of the kingdom, was one of great religious activity, owing to the spread of Vishnuite doctrines."

अनुवाद-प्रतापरुद्रदेव, जो कि सूर्यवंश का अन्तिम शासक था, का शासनकाल, यूँ तो राज्य के लिये बहुत नुकसानदायक था, परन्तु यह काल, वैष्णव मत के प्रचार के कारण, धार्मिक गतिविधियों से परिपूर्ण था।

पुरी गजेटियर उसी पृष्ठ पर आगे लिखता है-

"In 1510 Chaitanya, the great apostle of Vaishnavism, visited Orissa and there devoted the rest of his days to the propagation of the faith. He is said to have converted the king and several of his officers."

अनुवाद-सन् 1510 ई. में वैष्णव धर्म के महान प्रवर्तक चैतन्य उड़ीसा आये तथा उन्होंने अपने बाकी दिन वहाँ अपने मत के प्रचार में गुजार दिये। कहा जाता है कि उन्होंने राजा (प्रतापरुद्रदेव) तथा उसके अनेक अधिकारियों को वैष्णव मत में परिवर्तित कर दिया था।

इस प्रकार उड़ीसा की प्राचीन सूर्योपासक (अर्क) क्षत्रिय जाति धीरे-धीरे वैष्णव धर्मी हो गयी, तथा उसकी मूलभूत स्वतंत्र पहचान लुप्त हो गयी। उड़ीसा के खाड़ी तट पर खड़ा विशाल कोणार्क सूर्य मंदिर आज भी उड़ीसा के सूर्योपासकों के स्वर्णिम काल की याद दिला रहा है। अर्कवंश से संबंधित आयुधजीवी खाण्डायतों* का उड़ीसा में पाया जाना इस बात का संकेत देता है कि यहाँ कभी सूर्योपासकों (अर्कवंश) को एक विशिष्ट स्थान प्राप्त था।

कोणार्क मंदिर में स्थापित अर्क देवता की प्राचीन प्रतिमा

*बुन्देलखण्ड की इतिहास यात्रा एवं 'बुन्देलखण्ड में खंगार राज्य' नामक पुस्तकों से प्राप्त विवरणों के अनुसार उड़ीसा में खंगारों को ही खाण्डायत कहा जाता है। खाण्डायतों की गणना वहाँ आज भी उच्च क्षत्रियों में ही होती है।

अर्कवंशी क्षत्रियों के भेद

सूर्यवंशी अर्क क्षत्रियों से यूँ तो कई क्षत्रिय शाखाओं की उत्पत्ति हुयी, परन्तु इनमें सात भेद मुख्य रूप से जाने जाते हैं। इनका विवरण निम्नलिखित है-

महाराजा सल्हीय सिंह

1. अर्कवंशी- यह मुख्यतः सूर्य उपासकों की जाति है। इसी वंश में महाराज आर्यक, महाराज नंदिवर्धन, राजा बालार्क, महाराजा तिलोकचन्द, महारानी भीमादेवी, महाराजा दलपतसेन, महाराजा महिपतिसेन, महाराजा खड़गसेन, महाराजा सल्हीय सिंह, महाराजा मल्हीय सिंह, इत्यादि महान शासक हुए। इस वंश के कई वीरों ने अपने-अपने क्षेत्रों में आज़ादी की लड़ाई में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया था; उदाहरणार्थ, 1925 ई. में हुए काकोरी कांड की योजना में टिकरा (उन्नाव) के श्री गजोधर सिंह अर्कवंशी तथा उनके कई सजातीय बन्धु भी शामिल थे। इसे विडम्बना ही कहा जाएगा कि जहाँ सरकार ने ऊँची पहुँच वाले कुछ गद्दारों को भी सम्मानित कर दिया वहीं गजोधर सिंह जैसे साधारण पृष्ठभूमि के कई सच्चे क्रान्तिवीरों का नाम किसी ने नहीं लिया।

ये पुस्तक, मुख्यतः, इसी शाखा को केन्द्रित करते हुये लिखी गयी है।

महाराजा खेत सिंह

2. खांगर- यह एक वीर क्षत्रिय वंश है। अर्कवंशी खांगर क्षत्रियों का बुन्देलखण्ड (गढ़ कुण्डार) में एक गौरवशाली इतिहास रहा है। इस वंश ने कच्छ (गुजरात) में भी शासन किया है। ये आयुधजीवी क्षत्रिय हैं तथा 'खंग'
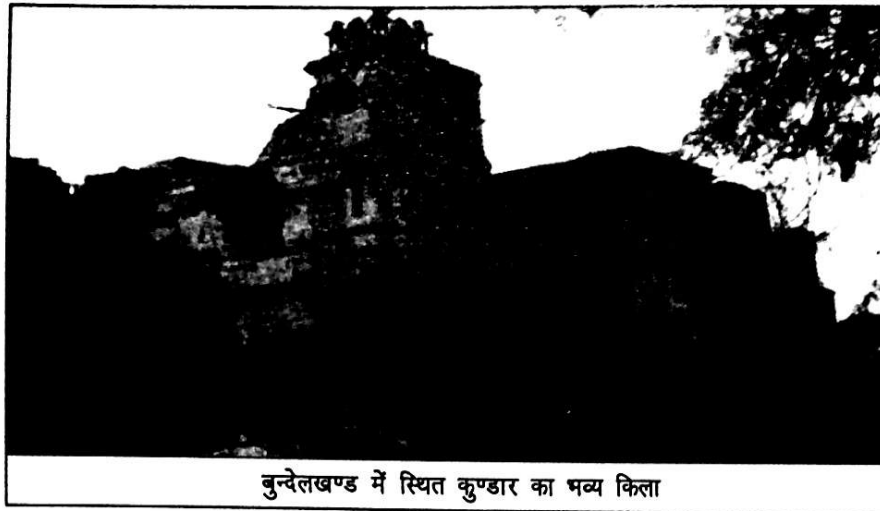
बुन्देलखण्ड में स्थित कुण्डार का भव्य किला

(एक प्रकार की तलवार) धारण करने के कारण 'खंगधार' या 'खंगार' भी कहे जाते हैं। कहीं-कहीं ये खड्गवंशी भी कहलाते हैं। राजस्थान में ये खांगरोत कहलाते हैं। इसके अलावा इन्हें खंगारोत, खंगर, राव खांगर, खंगधार, खेंगार, खेंगर, राय खेंगर, राय खंगार, इत्यादि नामों से भी जाना जाता है। इनकी एक उपाधि 'मिर्धा' भी है, जिसका उपयोग तंवर धार तथा भदावर धार के खंगार अधिक करते हैं।

इस जाति के महानुभावों में खेत सिंह, सम्पतराय खंगार और बाबर से लोहा लेने वाले चन्देरी-नरेश मेदिनी राय के नाम प्रमुख रूप से स्मरणीय हैं। खेत सिंह, पृथ्वीराज चौहान के प्रमुख सेनानायकों में से एक थे। पृथ्वीराज की सेना द्वारा लड़े गये कई युद्धों (जिनमें चन्देल-चौहान युद्ध तथा तराइन युद्ध भी शामिल हैं) में खेत सिंह ने अग्रणी भूमिका निभाई थी। तराइन युद्ध में चौहानों की पराजय के बाद खेत सिंह ने बुन्देलखण्ड में अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिया था।

सम्पतराय भी पृथ्वीराज चौहान की सेना का एक वीर सेनानी था। चन्देलों के साथ हुये युद्ध में जब पृथ्वीराज चौहान घायल होकर रणभूमि में गिर पड़े, तो उन्हें मरा समझकर चील-कौए उन पर झपट्टा मारने लगे। सम्पतराय, जो कि स्वयं भी घायल होकर युद्धभूमि में पड़ा था, ने जब यह देखा तो चील-कौओं का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिये उसने अपने शरीर का मांस काट-काटकर फेंकना शुरू कर दिया। इससे पृथ्वीराज की जान तो बच गयी, किन्तु अत्यधिक रक्तस्राव हो जाने के कारण वीर शिरोमणि सम्पतराय शहीद हो गया। धन्य है वह पावन भारतभूमि जिसने सम्पतराय जैसे स्वामिभक्त वीर बलिदानियों को जन्म दिया।

खेत सिंह ने कुण्डार में एक भव्य दुर्ग का निर्माण करवाया था, जो कि गढ़-कुण्डार के नाम से जाना गया। गढ़-कुण्डार का भव्य दुर्ग खण्डहर के रूप में बुन्देलखण्ड में आज

भी विद्यमान है और अर्कवंशी खांगर क्षत्रियों की गौरव गाथा सुना रहा है।

चौहानों से जुड़े होने के कारण कुछ लेखकों ने खांगरों को अग्निवंशी कहा है, किन्तु वास्तव में ये सूर्यवंशी (अर्कवंशी) राजा खंगराय (खांगर) के वंशज हैं। खांगरवंश एक वीर क्षत्रिय वंश है, जिसमें बड़े-बड़े योद्धा हुए हैं। 'आल्हा-खण्ड' में भी खांगरवंश की गणना बुन्देलखण्ड के छत्तीस क्षत्रिय राजकुलों में की गई है-

"अपने-अपने तम्बुन पै हों चालि नांच कंचनिन क्यार।
लगो कचहरी हां आल्हा कै बंगला भारी लाग दरबार।।
कुरी छतीसौं कौ अरघा तो वैठे बड़े-बड़े मैमार।
खांगर गूजर और रघुवंशी और धघेरे बैस पंवार।।
मीरा संययद काशीवाले चाचा बनारस का सरदार।
तौनो बैठे हैं बंगला मा आपन लीन्हे पूत परिवार।।"

सन् 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में इस जाति के कई महानुभावों ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया था, जिसमें रानी लक्ष्मीबाई की सेना की ओर से लड़ने वाले वीर लम्पू सिंह का नाम अग्रणी है। इसी देशभक्ति के कारण अंग्रेज इस राष्ट्रप्रेमी जाति के प्रति अत्यधिक द्वेष रखते थे। खांगर वीरांगनाओं में आधुनिककाल की रानी लक्ष्मीबाई कही जाने वाली सहोदराबाई राय का नाम प्रमुख रूप से स्मरणीय है। आपने (1955 ई.) गोवा आन्दोलन में प्रमुख भूमिका निभाई थी, तथा पुर्तगालियों की गोलियां खाकर भी तिरंगे को आँच नहीं आने दी थी। भारत सरकार ने जिला सागर (म.प्र.) के महिला प्राद्योगिकी विद्यालय का नामकरण उनके नाम पर करके उन्हें सम्मानित किया है।

खांगरों (खंगारों) के इतिहास के विषय में अधिक जानकारी के लिये 'बुन्देलखण्ड में खंगार राज्य' नामक पुस्तक का अवलोकन किया जा सकता है।

3. खिदमतिया- ये उदमतिया वंश से संबंधित अर्कवंशी क्षत्रिय हैं तथा आर्षवंशी भी कहलाते हैं। इनका मूलस्थान, मेवाड़ में, उदमतपुर है। इनकी स्वामिभक्ति एवं वीरता से प्रभावित होकर अकबर ने इन्हें भारी संख्या में अपने महल की सुरक्षा हेतु नियुक्त किया था। उल्लेख मिलता है कि इन्हें इनके मुखिया खिदमत राव के नाम पर 'खिदमतिया' की उपाधि दी गयी थी।

4. चोबदार- ये सूरवार वंश से संबंधित सूर्यवंशी क्षत्रिय हैं। ये बहुत अच्छे घुड़सवार माने जाते थे। अकवर के जमाने में इन्हें राजमहल की भोजन व्यवस्था का जिम्मा सौंपा गया था, इसलिये इन्हें 'चोबदार' अर्थात 'भोजन जिमाने वाला' कहा गया।

5. अधिराज- ये अपने आपको ब्राह्मण बताते हैं। मूलतः ये सूर्यवंशी क्षत्रिय हैं, किन्तु सम्भवतः ब्राह्मणों के सानिध्य में आने से ये ब्राह्मण कहलाने लगे। क्षत्रियों का ब्राह्मण बन जाना कोई नई बात नहीं है। कई ब्राह्मण वंश जैसे दीक्षित, कौशिक आदि पहले क्षत्रिय ही थे। इसका एक अपभ्रंश (विकृत रूप) 'अदरीज' भी है।

6. गौड़- यह एक स्थान-जन्य नाम है। गौड़ प्रदेश में रहने वाले अर्कवंशी क्षत्रियों को 'गौड़' कहा गया। ये राजपूतों में गिने जाते हैं, परन्तु वास्तव में ये अर्कवंश की प्राचीन शाखा के क्षत्रिय हैं। इनका एक अपभ्रंश 'गौर' भी है। 'क्षत्रिय वंशार्णव' के अनुसार इनकी प्राचीन राजधानी श्रावस्ती (गोंडा में) थी।

7. वाछल- ये भी अब राजपूतों में गिने जाते है। 'वछ' गोत्र धारण करने के कारण ये 'वाछल' कहलाये। ये वच्छेल, वाछिल आदि नामों से भी जाने जाते हैं। इनकी नामोत्पत्ति से संबंधित एक उल्लेख और भी मिलता है कि तुर्क आक्रमणकारियों से प्राणरक्षार्थ जो अर्कवंशी बागों में छिप गये उन्हें 'वाछल'* राजपूत कहा गया; परन्तु यह विचार तनिक भी तर्कसंगत नहीं लगता है। मुस्लिम शासनकाल में इस वीर जाति पर घोर अत्याचार हुये तथा कई वाछलों को जबरन मुसलमान बनाया गया। ये लखीमपुर-खीरी, सीतापुर, शाहजहाँपुर आदि क्षेत्रों में पाये जाते हैं।

अर्कवंशी क्षत्रियों के उपरोक्त सात उपभेदों का जिक्र पंडित छोटेलाल शर्मा ने भी अपने ग्रन्थ 'जातीय अन्वेषण-1' में किया है।

अर्कवंशी क्षत्रियों से सम्बन्धित विभिन्न क्षत्रिय शाखायें

जैसा कि पहले विवरण दिया गया है कि **अर्क** नामधारी क्षत्रियों की कई शाखायें हैं और सभी अलग-अलग मूलपुरुषों से अपनी उत्पत्ति बताते हैं; उदाहरणतया, अर्यमा के वंशज अर्क-क्षत्रिय, अर्क शिरोमणि मर्यादा पुरुषोत्तम राम के छोटे भ्राता के पुत्र तक्षक के वंशज अर्क-क्षत्रिय, सूर्यवंशी शाक्यवंश से संबंधित अर्क-क्षत्रिय तथा सूर्यवंशी राजा कनकसेन से संबंधित अर्क-क्षत्रिय, परन्तु वे सभी सूर्यवंशी होने के कारण एक दूसरे से जुड़े हुये हैं। इसके अतिरिक्त अर्क क्षत्रियों की दो शाखायें चन्द्रवंश से संबंधित भी पायी जाती हैं, जैसे-चन्द्रवंशी राजा अलर्क के वंशज अर्क-क्षत्रिय, तथा चन्द्रवंशी राजा अर्कसेन के वंशज अर्क-क्षत्रिय। चन्द्रवंश से संबंधित उपरोक्त अर्कवंशी शाखाएँ मूलतः सूर्यवंशी ही थीं जो कि किसी काल में चन्द्रवंश में विलीन हो गयीं, परन्तु उनके वंशजों ने अपने मूलवंश के नाम को कायम रखा।

*इसी तरह के मूर्खतापूर्ण मनगढ़ंत विचार 'अरख' शब्द की उत्पत्ति से संबंधित भी मिलते हैं, जैसे-अर्कवंशियों ने अरहर के खेत में छिपकर तुर्कों से प्राणरक्षा की थी इसलिए वे 'अरख' कहलाए। वास्तविकता ये है कि वक्त के साथ स्थानीय बोलचाल की भाषा के अनुसार शब्दों के उच्चारण बदलते गये। जिस प्रकार शुद्ध शब्द 'मौर्य' का उच्चारण खड़ी बोली में 'मुराव', 'चाहमान' का उच्चारण 'चौहान', 'प्रतिहार' का उच्चारण 'प्रहरी' और 'परिहार', 'अधिराज' का उच्चारण 'अदरीज', तथा 'प्रमार' का उच्चारण 'परमार' और 'पवांर' हो गया, उसी प्रकार 'अर्क' शब्द का उच्चारण, भाषा के अनुसार, 'अरक' और 'अरख' हो गया। ये कुछ ऐसे ही है जैसे ग्रामीण जनता 'कार्ड' का उच्चारण 'कारड' या 'कारट' करती है।

इन विभिन्न शाखाओं से संबंधित अर्क क्षत्रिय वर्तमान भारत देश के कई प्रान्तों में फैले हुये हैं, किन्तु ऐतिहासिक जानकारी के अभाव में एक दूसरे के साथ संबंध स्थापित करने में संकोच करते हैं। अर्कवंश के इतिहास की खोज एवं शोध के दौरान उपरोक्त शाखाओं के अर्कवंशी क्षत्रियों की कुछ खांपों की जानकारी प्राप्त हुयी है, जिनमें से कुछ का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है-

1. **सूर्यवंशी क्षत्रिय**-मूलवंश-सूर्यवंश, मूलस्थान-मथुरा, मूलपुरुष-सूरसेन, शाखा-सूरजवंशी, गोत्र-कश्यप, प्रवर-तीन।
2. **रघुवंशी क्षत्रिय**-मूलवंश-सूर्यवंश, मूलस्थान-अयोध्या, मूलपुरुष-रघु, शाखा-रघुवंश, गोत्र-वशिष्ट, प्रवर-तीन।
3. **अर्कवंशी क्षत्रिय**(1)-मूलवंश-सूर्यवंश, मूलस्थान-चक्रनगरी (सौराष्ट्र), शाखा-अर्क (आर्ष), गोत्र-शाण्डिल्य, प्रवर-तीन।
4. **अर्कवंशी क्षत्रिय**(2)-मूलवंश-सूर्य (शाक्य) वंश, मूलस्थान-श्रावस्ती, मूलपुरुष-शाक्य, गोत्र-गौतम, कश्यप, प्रवर-तीन।
5. **अर्कवंशी क्षत्रिय**(3)-मूलवंश-सूर्य (तक्षक) वंश, मूलस्थान-पाटिलीपुत्र, मूलपुरुष-आर्यक (सूर्यक या अजक), गोत्र-शौनक, प्रवर-तीन।
6. **अर्कवंशी क्षत्रिय**(4)-मूलवंश-चन्द्रवंश, मूलस्थान-सरगूजा (म.प्र.), मूलपुरुष-अर्कसेन, गोत्र-अत्रि, प्रवर-तीन।
7. **अर्कवंशी क्षत्रिय**(5)-मूलवंश-चन्द्रवंश, मूलस्थान-प्रतिष्ठानपुर, मूलपुरुष-अलर्क, गोत्र-भारद्वाज, प्रवर-तीन।
8. **खांगरवंशी क्षत्रिय**-मूलवंश-सूर्यवंश, मूलस्थान-चित्तौड़गढ़, मूलपुरुष-खांगर, शाखा-खांगरोत, गोत्र-कौंडिल्य, प्रवर-तीन।
9. **वाछिलवंशी क्षत्रिय**-मूलवंश-सूर्यवंश, मूलस्थान-मेवाड़, मूलपुरुष-वाछिल, गोत्र-वशिष्ट, वछ, प्रवर-तीन।
10. **उदमतिया क्षत्रिय**-मूलवंश-सूर्यवंश, मूलस्थान-उदमतपुर, मूलपुरुष-राजर्षि उदालक, शाखा-आर्ष, गोत्र-वत्स, प्रवर-पाँच।
11. **सुरवारवंशी क्षत्रिय**-मूलवंश-सूर्यवंश, मूलस्थान-चैनपुर, मूलपुरुष-श्रुतसेन, प्रशाखा-चोबदार, गोत्र-गार्ग्य, प्रवर-तीन।
12. **गढ़यितवंशी क्षत्रिय**-मूलवंश-सूर्यवंश, मूलस्थान-वत्सभूमि, मूलपुरुष-राजपाल, शाखा-प्रतिहार, गोत्र-कश्यप, प्रवर-तीन।
13. **प्रतिहारवंशी क्षत्रिय**-मूलवंश-सूर्यवंश, मूलस्थान-कान्यकुब्ज, मूलपुरुष-नागभट्ट, प्रशाखा-प्रहरी, गोत्र-कश्यप, प्रवर-तीन।

14. **कोल्यारवंशी क्षत्रिय**-मूलवंश-सूर्यवंश, मूलस्थान-कौशाम्बी, मूलपुरुष-महीपसेन, गोत्र-कश्यप, प्रवर-तीन।

15. **गौड़वंशी क्षत्रिय**-मूलवंश-सूर्यवंश, मूलस्थान-शिवगढ़, मूलपुरुष-तक्ष, गोत्र-भारद्वाज, पराशर, प्रवर-तीन।

16. **नागवंशी क्षत्रिय**-मूलवंश-सूर्यवंश, मूलस्थान-मथुरा, काशी, मूलपुरुष-भवनाग, गोत्र-कश्यप, प्रवर-तीन।

17. **आहड़ियावंशी क्षत्रिय**-मूलवंश-सूर्यवंश, मूलस्थान-आहड़ प्रदेश (मेवाड़), मूलपुरुष-कनकसेन, गोत्र-शाण्डिल्य, प्रवर-तीन।

18. **गोहिलवंशी क्षत्रिय**-मूलवंश-सूर्यवंश, मूलस्थान-भावनगर (काठियावाड़), मूलपुरुष-गुहिलदेव, गोत्र-कश्यप, प्रवर-तीन।

19. **सिसौदवंशी क्षत्रिय**-मूलवंश-सूर्यवंश, मूलस्थान-शालुम्बर (मेवाड़), मूलपुरुष-सिंहकेतु, गोत्र-गौतम, प्रवर-तीन।

20. **बल्लावंशी क्षत्रिय**-मूलवंश-सूर्यवंश, मूलस्थान-वल्लभी, मूलपुरुष-भट्टार्क, गोत्र-गोभिल, प्रवर-पाँच।

21. **रेवतवंशी क्षत्रिय**-मूलवंश-सूर्यवंश, मूलपुरुष-रैवत, गोत्र-कश्यप, प्रवर-तीन।

22. **आनर्तवंशी क्षत्रिय**-मूलवंश-सूर्यवंश, मूलपुरुष-आनर्त, प्रशाखा-अर्क या अधिराज, गोत्र-शाण्डिल्य, प्रवर-तीन।

उपलब्ध प्रमाणों के अनुसार, उपरोक्त 22 शाखाओं के क्षत्रियों का अपना एक सशक्त सैनिक संगठन था, जो कि **अर्कमण्डल** के नाम से विख्यात था और इन सभी का एक दूसरे के साथ रोटी-बेटी का भी संबंध था। ये वह काल था जब अर्कमण्डल नामक इस क्षत्रिय-संघ का शासन सिंधु प्रान्त, सौराष्ट्र (वल्लभी, गुजरात), पंचनद (पंजाब), तक्षशिला, आनर्त, मालवा, मत्स्य, किरात, तुरुष्क, वत्स, कौशाम्बी, अवन्ती, पाटिलीपुत्र, श्रावस्ती, सरगूजा, अर्कोना-अर्कौना (ब्रम्हाइच), कान्यकुब्ज, काशी, मथुरा, अयोध्या आदि स्थानों पर रहा। अर्कमण्डल का उल्लेख बेंदला प्रशस्ति और बघेल प्रशस्ति जैसे कई प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है।

उपरोक्त अर्कमण्डल सन् 730 ई. से सन् 912 ई. तक कायम रहा। पुरोहितों के षड्यंत्रों के कारण क्षत्रिय राजाओं में विद्वेष पैदा हो गया जिससे यह शक्तिशाली संगठन छिन्न-भिन्न हो गया। परिणामस्वरूप छोटे-छोटे राजा और सामन्त स्वयं को स्वतंत्र घोषित करने लगे और आपस में ही युद्धातुर हो गये। संघीय शक्ति के बिखरते ही विदेशी भी भारत देश पर आक्रमण की घात लगाने लगे तथा आपसी फूट के बड़े ही भयंकर परिणाम

भुगतने पड़े। आपसी फूट का लाभ उठाकर ग्यारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में महमूद ग़जनवी की तुर्क सेना ने भारत पर आक्रमण कर दिया। भारत भूमि को रौंदते हुये, सन् 1018 ई. में, कान्यकुब्ज प्रदेश पर भी उसने धावा बोल दिया। विवश होकर क्षत्रिय राजाओं ने पुनः अपने सैनिक संघ को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया और लम्बे समय तक तुर्क सेना को उलझाये रखा। महमूद ग़जनवी की तुर्क सेना ने भेद-नीति का प्रयोग करते हुये निर्णायक अन्तिम युद्ध सन् 1026 ई. में किया और विजय प्राप्त की। इस युद्ध में कान्यकुब्ज साम्राज्य का पतन हो गया, जिसके परिणामस्वरूप तुर्क सेना का दमन चक्र प्रारम्भ हुआ तथा क्षत्रिय राजाओं को अपनी धर्म-रक्षा, प्राण-रक्षा निमित्त इधर-उधर छिपना-भटकना पड़ा।

क्षत्रियों के संघ अर्कमण्डल के छिन्न-भिन्न होने तथा उनके राज्यच्युत हो जाने के कारण उक्त 22 वंशों के क्षत्रियों के बीच दूरियाँ बढ़ीं और सभी भिन्न-भिन्न प्रान्तों में जाकर बस गये। समूह से अलग-थलग पड़ने के कारण इनमें से अनेक अर्क क्षत्रियों के आपसी संबंध भी समाप्त हो गये। वर्तमान में अवध प्रान्त और युक्त प्रदेश में निवास करने वाले अर्कवंशी क्षत्रियों के बीच ही संबंध कायम हैं।

आलस्य जीवित आदमी को दफना देता है।

- जैरेमी टेलर

★

जो कर्तव्य से बचता है, वह लाभ से वंचित रहता है।

- एमर्सन

★

अपराधी अपने सिवाय और सबको दोष देता है।

- डेल कारनेगी

★

स्थायी एकता वहीं उत्पन्न होती है, जहाँ अन्तःकरण एक होता है।

- स्वामी रामतीर्थ

★

प्राचीन क्षत्रिय वंश एवं राजपूत संबंध

प्राचीनकाल में जब कर्मों के आधार पर भारतीय समाज का वर्गीकरण किया गया, तो जिस वर्ग को राज्य प्रशासन एवं सुरक्षा का जिम्मा सौंपा गया, उसे 'क्षत्रिय' कहा गया। प्रारम्भ में सिर्फ दो ही क्षत्रिय वंश थे, सूर्यवंश और चन्द्रवंश। कालान्तर में इन दो वंशों से अनेक प्राचीन क्षत्रिय वंशों की उत्पत्ति हुयी, जैसे-शाक्यवंश, अर्कवंश (शाखा के रूप में), नागवंश, तक्षकवंश, कण्ववंश, इक्ष्वाकुवंश, यदुवंश, सोमवंश (शाखा के रूप में), इन्दुवंश, मौर्यवंश, इत्यादि। आदिकाल से ही ये प्राचीन क्षत्रिय वंश भारत के विभिन्न हिस्सों पर शासन करते आये थे। पुरोहित-वर्ग की गलत नीतियों एवं आडंबरों के चलते अधिकतर प्राचीन क्षत्रिय वंश बौद्ध एवं जैन धर्मों के समर्थक हो गये थे। इसी कारण से पुरोहित-वर्ग प्राचीन क्षत्रिय वंशों का विरोधी हो गया था।

हर्षवर्धन की मृत्यु के बाद उत्तर भारत में मची राजनीतिक एवं सामाजिक उथल-पुथल का लाभ उठाते हुये पुरोहित-वर्ग ने कई जातियों के मिश्रित वर्ग को नव-क्षत्रियों के रूप में समाज में प्रतिष्ठापित कर दिया। इसी वर्ग को 'राजपूत' कहा गया। श्री वी.के. भण्डारी और श्री एस.एल. केली द्वारा लिखित पुस्तक 'इण्डियन हिस्ट्री एण्ड कल्चर' के सन् 1987 के संस्करण के पृ. 128 पर लिखा है-

"The term 'Rajput' does not occur in the early Sanskrit literature nor do we hear of the Rajput clans before the eighth century A.D. This proves that they were a later addition to the population of India."

अनुवाद-प्राचीनकालीन संस्कृत साहित्य में 'राजपूत' शब्द का कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता और न ही आठवीं शताब्दी से पूर्व राजपूत जातियों के विषय में कुछ सुनाई पड़ता है। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि वे भारतीय समाज में बाद में सम्मिलित किये गये।

श्री एस. आबिद हुसैन कृत 'द नेशनल कल्चर ऑफ इण्डिया' (The National Culture of India) के पृ. 59 पर लिखा है-

"In order to acquire a higher status in Hindu society they claimed to be the descendants of old Kshatriya heroes and began to call themselves Rajputs."

अनुवाद-हिन्दू समाज में उच्च स्थान प्राप्त करने हेतु वे (नव-क्षत्रिय) खुद को प्राचीन क्षत्रिय वीरों का वंशज बताने लगे और स्वयं को राजपूत कहने लगे।

पुरोहित-वर्ग द्वारा स्थापित होने के कारण राजपूत (नव-क्षत्रिय) ब्राह्मणों (पुरोहितों) के कट्टर समर्थक थे, तथा आँख मूंदकर उनकी बात मानते थे। राजपूतों के राज्य विस्तार के दौरान पुरोहित-वर्ग ने खुलकर उनका साथ दिया, तथा छल-छद्मों के द्वारा प्राचीन क्षत्रिय वंशों की जगह राजपूतों को क्षत्रियों के रूप मे प्रतिष्ठित कर दिया।* इतना ही नहीं अनेक प्राचीन क्षत्रिय वंशों, जैसे-बैस क्षत्रिय, गौतम क्षत्रिय, चंदेलों, इत्यादि को राजपूतों से रोटी-बेटी का संबंध कायम करने के लिये बाध्य किया गया। इस प्रकार एक तरफ तो इन प्राचीन क्षत्रिय वंशों की स्वतंत्र पहचान लुप्त हो गयी, तो वहीं दूसरी तरफ राजपूतों को क्षत्रियों का दर्जा प्राप्त होने में आसानी हो गयी।

भारतवर्ष में राजपूतों का एक शक्ति के रूप में उभरने के साथ ही, उनके और प्राचीन क्षत्रिय वंशों के बीच प्रभुसत्ता की लड़ाई प्रारम्भ हो गयी। इन संघर्षो के कारण प्राचीन एवं नव क्षत्रिय दो परस्पर विरोधी खेमों में बँट गये तथा पुरोहित-वर्ग दुश्मनी की इस आग को हवा देता रहा। इस तरह की स्थिति 12वीं शताब्दी तक कायम रही और जिस समय यह लग रहा था कि इन दोनों वर्गों की आपसी वैमनस्यता पूरे देश को झुलसा देगी, उसी समय भारतीय राजनैतिक पटल पर पृथ्वीराज चौहान का उद्भव हुआ। पृथ्वीराज चौहान एक दूरदर्शी एवं समझदार शासक था। वह इस बात को समझता था कि बाह्य आक्रमणकारियों से टकराने के लिये प्राचीन क्षत्रियों एवं राजपूतों में एकता होनी आवश्यक है। इसी कारण उसने प्राचीन 'अर्कमण्डल' की तर्ज पर एक क्षत्रिय-संघ की स्थापना की, जिसमें प्राचीन एवं नव क्षत्रिय दोनों शामिल थे। इसी संघ की बदौलत उसने सन् 1191 ई. में हुये प्रथम तराइन युद्ध में मुहम्मद गौरी की तुर्क सेना को बुरी तरह खदेड़ दिया। राजा जयचंद जैसे कुछ राजपूतों की गद्दारी के चलते उक्त क्षत्रिय संघ कमजोर पड़ गया, तथा इसी का लाभ उठाकर मुहम्मद गौरी ने सन् 1192 ई. में तराइन के मैदान पर क्षत्रिय सेना को पराजित कर दिया।

पृथ्वीराज चौहान की मृत्यु के पश्चात् राजपूतों और प्राचीन क्षत्रियों के बीच मतभेद

*राजपूतों को क्षत्रियों के रूप में स्थापित करने में पुरोहितों द्वारा रचित परशुराम कथा की बहुत बड़ी भूमिका रही है। इस कथा के अनुसार प्राचीन क्षत्रियों से रुष्ट होकर परशुराम ने पृथ्वी से उनका नामोनिशान मिटा दिया, और उन्होंने ऐसा एक-दो बार नहीं पूरे इक्कीस बार किया। आज कोई भी समझदार व्यक्ति इस फर्जी कथा पर विश्वास नहीं कर सकता, किन्तु तत्कालीन भारतीय समाज, अशिक्षित होने के कारण, कथा के पीछे पुरोहितों की असली मंशा को समझने के बजाये उसकी रहस्यमयता में ही उलझा रहा। इस कथा के पीछे पुरोहितों का वास्तविक उद्देश्य था भारतीय समाज में यह सिद्ध करना कि चूँकि सभी प्राचीन क्षत्रिय परशुराम द्वारा खत्म कर दिये गये थे इसलिए पुरोहित-वर्ग द्वारा स्थापित नव-क्षत्रिय ही असली क्षत्रिय हैं। क्या ये सम्भव है कि एक अकेला व्यक्ति सम्पूर्ण जाति को नष्ट कर दे, वो भी पूरे इक्कीस बार? आज भी भारतीय समाज के अनपढ़ (और कुछ पढ़े-लिखे लोग भी), बौद्धिक-अपराधी पुरोहितों (पंडितों) द्वारा रचित रहस्यवादी एवं फर्जी कथाओं पर यकीन करते हैं, जो कि हास्यास्पद होने के साथ-साथ खेदजनक भी है।

पुनः उभरने लगे। इन मतभेदों को बढ़ाने में पुरोहित-वर्ग ने अहम् भूमिका निभाई क्योंकि राजपूतों और प्राचीन क्षत्रियों की एकता उनकी प्रभुसत्ता के लिये खतरा बन सकती थी। पुरोहित-वर्ग के दुष्प्रचारों के चलते, धीरे-धीरे, जहाँ एक तरफ राजपूतों को 'क्षत्रियों' के रूप में मान्यता मिल गयी, वहीं दूसरी तरफ अधिकतर प्राचीन क्षत्रिय वंश या तो राजपूत जाति में सम्मिलित होकर स्वयं 'राजपूत' कहलाने लगे (और अपनी पहचान खो दी), या फिर राजसत्ता छिन जाने के बाद दर-दर की ठोकरें खाने को मजबूर हो गये। अर्कवंश से सम्बन्धित कुछ प्राचीन क्षत्रियों, जैसे- गौड़, वाछल, उदमतिया, गढ़यित इत्यादि ने भी किसी काल में नवक्षत्रियों (राजपूतों) से सम्बन्ध स्थापित कर लिए तथा 'राजपूत' कहलाने लगे; इसी कारणवश आज इनमें से किसी के भी साथ अर्कवंशी क्षत्रियों के सामान्य रोटी-बेटी के सम्बन्ध नहीं हैं।

क्षत्रियों से संबंधित भ्रम

भारतीय, विशेषतः उत्तर भारतीय, समाज में एक आम भ्रम है कि वर्तमान राजपूत ही असली क्षत्रिय हैं। पुरोहित-वर्ग द्वारा प्रचारित यह धारणा लोगों की मानसिकता पर इस कदर हावी हो गयी कि अनेक प्राचीन क्षत्रिय वंश भी स्वयं को 'राजपूत' कहने लगे। एक बात सभी लोगों को एकदम स्पष्ट होनी चाहिये कि 'राजपूत' क्षत्रिय-वर्ग का एक हिस्सा मात्र है, न कि सम्पूर्ण क्षत्रिय बिरादरी। जो लोग ये समझते हैं कि सिर्फ राजपूत ही क्षत्रिय हैं, उन्हें शायद यह पता ही नहीं है कि राजपूत जाति के उद्भव से सैकड़ों वर्ष पूर्व भी सम्राट प्रद्योत, महाराजा आर्यक, महाराजा नंदिवर्धन, महाराजा बालार्क, सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य, सम्राट अशोक, महाराजा कनकसेन, सम्राट हर्षवर्धन जैसे महान प्रतापी राजा हुये थे, जो कि राजपूत नहीं थे बल्कि प्राचीन क्षत्रिय वंशों, जैसे-तक्षकवंश, अर्कवंश, मौर्यवंश, नागवंश, इत्यादि के कुलज थे। यदि सिर्फ राजपूत ही क्षत्रिय हैं, तो उक्त प्राचीन क्षत्रिय वंशों के वंशधर कौन हैं? क्या वे क्षत्रिय नहीं हैं? वास्तव में भारतवर्ष के अनेक क्षत्रिय वंश, जैसे-केरल के नायर, महाराष्ट्र के मराठे (शिवाजी के वंशज), इन्दौर के होल्कर, उड़ीसा के खाण्डायत, इत्यादि क्षत्रिय तो हैं परन्तु राजपूत नहीं हैं। अतः यह गलतफहमी दूर होनी चाहिये कि 'क्षत्रिय' और 'राजपूत' पर्यायवाची शब्द हैं।

अर्कवंश एक प्राचीन क्षत्रिय वंश है तथा राजपूतों के उद्भव से पूर्व भी इसके कुलज भारत के विभिन्न हिस्सों पर राज करते आये थे। यूँ तो अर्कवंश ने अपनी स्वतंत्र पहचान बनाये रखने हेतु नवक्षत्रियों से कभी पूर्णरूपेण संबंध स्थापित नहीं किये, परन्तु इसके अपवाद भी मिलते हैं; उदाहरणतया, कानपुर के कुछ क्षेत्रों में अर्कवंशी ठाकुरों के ठिकाने पाये जाते हैं। इसका उल्लेख करते हुये 'द कास्ट सिस्टम ऑफ नार्थ इंडिया' नामक ग्रंथ पृ. 54 पर लिखता है-

"In Cawnpore were found some Thakur-Arakhs."

अनुवाद-कानपुर में कुछ अर्क ठाकुर पाये गये हैं।

मालूम होता है कि किसी काल में यहाँ के अर्कवंशियों के संबंध राजपूतों से स्थापित हो गये, तथा उनकी संतानों को अर्कवंशी ठाकुर कहा जाने लगा। यहाँ पर ये भी उल्लेख करना आवश्यक है कि यूँ तो 'ठाकुर' शब्द का प्रयोग प्रायः राजपूत ही करते आये हैं, परन्तु दूसरी जातियों के सशक्त लोग (मुख्यतः जमींदार) भी इस शब्द का प्रयोग करते रहे हैं। उदाहरणतया- बिहार के भूमिहार। चूँकि ठाकुर शब्द का सम्बन्ध जाति से कम तथा पद एवं शक्ति से अधिक रहा है, इसलिए यह सम्भव है कि कानपुर के कुछ शक्तिशाली अर्कवंशी क्षत्रिय जमींदारों को 'अर्क ठाकुर' के नाम से जाना जाने लगा।

कहने का तात्पर्य ये है कि 'ठाकुर' शब्द का प्रयोग नवक्षत्रिय (राजपूत) जमींदारों द्वारा प्रारम्भ किया गया था, परन्तु प्राचीन क्षत्रिय वंशों तथा अन्य जातियों के सशक्त जमींदार लोग भी इस शब्द का प्रयोग करते आए हैं। अतः 'ठाकुर' शब्द को महज नव क्षत्रियों (राजपूतों) से ही जोड़कर नहीं देखा जाना चाहिए।

आधुनिक समय की मांग

अब वह समय आ गया है जब सभी क्षत्रियों को पुरानी रूढ़ियाँ त्यागकर, नयी दिशा में कदम बढ़ाने की जरूरत है। आज देश में हर तरफ हाहाकार सुनाई दे रहा है। निर्बल और सबल के बीच की खाई बढ़ती चली जा रही है, तथा निर्बल वर्ग का बौद्धिक शोषण भी प्रारम्भ हो गया है। ऐसे दुश्वार समय में आवश्यकता इस बात की है कि, नव एवं प्राचीन (स्थापित एवं विस्थापित), सभी क्षत्रिय अपने मतभेदों को भुलाकर राष्ट्र निर्माण में एक दूसरे का सहयोग करें। स्थापित और विस्थापित सभी क्षत्रियों को एकजुट करने का एक प्रयास 'अखिल भारतीय क्षत्रिय महासभा' के पूर्व राष्ट्रीय संगठन मंत्री स्व. भगवानदीन सिंह जी द्वारा किया गया था, परन्तु उनके बाद ये लौ मद्धिम पड़ गयी।

जो लोग राष्ट्रप्रेम के खोखले दावे करते हैं, उन्हें क्षत्रिय-एकता की ये बातें अवश्य ही अरुचिकर लगेंगी किन्तु जिन क्षत्रियों को भारत-माँ से सच्चा प्यार है, वे अवश्य ही इस संबंध में कोई ठोस कदम उठायेंगे। शक्तिशाली राजपूत-वर्ग की ये विशेष जिम्मेदारी है कि वह निर्बल, दीन-हीन एवं बिछड़े क्षत्रियों को ऊपर उठने में सहयोग करे। ऐसा करने पर ही राष्ट्रप्रेम के उनके दावे सच्चे साबित होंगे।

कर्तव्य कहता है कि पुराने ढर्रे को तोड़ो, उससे लड़ो और अवांछनीयता को हटाओ, परन्तु अर्जुन का मोह पुराने चिर-अभ्यस्त, चिर-परिचित ढर्रे को तोड़ने का साहस नहीं कर पाता, और वह सोचता है कि जैसा चल रहा है चलने दिया जाए। फिर भी, अन्याय को मिटाने तथा व्यवस्था को सुधारने के लिये अर्जुन को मोह के बदले कर्तव्य को प्राथमिकता देनी ही पड़ती है। अर्जुन के जैसी दुविधापूर्ण स्थिति आज क्षत्रियों की भी है। एक तरफ

रूढ़ियों, आडंबरों एवं पाखण्डों के प्रति उनका सदियों पुराना मोह है, तो दूसरी तरफ पुराने ढर्रे को तोड़कर व्यवस्था को दुरुस्त करने और राष्ट्र निर्माण करने का उनका कर्तव्य। मोह अपनी तरफ खींचता है, कर्तव्य अपनी तरफ। यदि देश में स्वस्थ परिवर्तन लाना है, तो अर्जुन के समान सभी क्षत्रियों को रूढ़ियों, आडम्बरों, पाखण्डों एवं पाखण्डियों के प्रति अपना मोह त्यागना होगा, तथा व्यक्तिगत स्वार्थों से ऊपर उठकर मिलजुल कर राष्ट्र निर्माण हेतु प्रयासरत होना होगा।

भारतवर्ष में जब कभी भी क्रान्तिकारी परिवर्तन हुये हैं तो उनके मुखिया क्षत्रिय ही रहे हैं। सम्पूर्ण राष्ट्र को एक सूत्र में पिरोने हेतु सभी क्षत्रियों को एकजुट होकर अग्रणी भूमिका निभानी होगी। ऐसा तभी सम्भव है जब सभी क्षत्रिय मध्यकालीन स्थिरवादी रुग्ण मानसिकता (सुपीरिऑरिटी कॉम्प्लेक्स) से बाहर आकर, एक दूसरे के प्रति बिना कोई द्वेष-भाव रखे प्रगति पथ पर साथ मिलकर कदम बढ़ायें। यदि हमने ऐसा न किया, तो भारत को एक विकसित एवं शक्तिशाली राष्ट्र बनाने का हमारा स्वप्न अधूरा ही रह जायेगा।

जोश न ठण्डा होने पाये कदम मिलाकर चल।
मंजिल तेरे पग चूमेगी आज नहीं तो कल।।
सबकी हिम्मत सबकी ताकत सबकी मेहनत एक।
सबकी इज्जत सबकी दौलत सबकी किस्मत एक।।
शूल बिछे अगणित राहों में राह बनाता चल।
मंजिल तेरे पग चूमेगी आज नहीं तो कल।।
नूतन वेदी बलिदानों की माँगे आज जवानी।
देनी होगी हमें देश-हित फिर से अब कुर्बानी।।
बलिदानों का ढेर लगा इतिहास बदलता चल।
मंजिल तेरे पग चूमेगी आज नहीं तो कल।।
सबका मन्दिर सबकी मस्जिद गिरिजाघर गुरुद्वारा।
हिन्दू-मुस्लिम सिक्ख ईसाई भारत सबको प्यारा।।
एक-एक से मिलकर बनता संघ शक्ति का बल।
मंजिल तेरे पग चूमेगी आज नहीं तो कल।।

> हार्दिक ऐक्य के बिना दिमागी ऐक्य का उपदेश देना मानो आकाश के तारे तोड़ना है।
>
> -रस्किन

प्राचीन क्षत्रिय वंशों का पराभव और अर्कवंश

(एक विश्लेषण)

अर्कवंशियों के विषय में उपलब्ध सभी प्राचीन तथा मध्यकालीन लेख तथा व्याख्यान इस बात की पुष्टि करते हैं कि अर्कवंशी वस्तुतः सूर्यवंशी क्षत्रिय हैं। इस क्षत्रिय वंश से आगे चलकर कई क्षत्रिय शाखायें एवं उपशाखायें बनीं, जिनका उल्लेख पहले किया जा चुका है। इनमें से कई शाखाओं एवं उप-शाखाओं के क्षत्रिय आज भी समाज के उच्च वर्गों में गिने जाते हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि एक प्राचीन एवं गौरवशाली क्षत्रिय वंश होने के बावजूद आखिर क्यों अर्कवंश सामाजिक रूप से इतना पिछड़ गया? आखिर क्या हुआ कि अर्कवंशी क्षत्रिय, 'अरक' एवं 'अरख' कहलाने लगे? आखिर क्यों अर्कवंश से उत्पन्न दूसरी शाखाओं के क्षत्रिय, अर्कवंशियों को अपने से अलग एवं हीन समझने लगे तथा उनसे रोटी-बेटी का सम्बन्ध भी तोड़ लिया? आखिर क्यों अर्कवंशी क्षत्रिय समाज भी स्वयं को हेय समझता है? आखिर क्यों आज अर्कवंशी क्षत्रिय यह भूल गये हैं कि उनकी रगों में वीर-बलिदानियों का रक्त बह रहा है?

इन प्रश्नों का उत्तर इतनी सहजता से नहीं दिया जा सकता जितना कि प्रतीत होता है। इन उत्तरों को खोजने से पहले, प्राचीनकाल से अब तक के भारतीय इतिहास को तथा भारत के बदलते हुये सामाजिक एवं राजनीतिक परिदृश्य को समझना आवश्यक होगा।

भारत में जैसे-जैसे आर्यों का प्रभुत्व बढ़ा, वैसे-वैसे ही उनकी पूजा-पद्धतियों तथा रीति-रिवाजों का भी प्रचार हुआ। प्रारम्भ में (ऋग्वेदिक काल में) आर्यों की पूजा-पद्धतियां अत्यंत साधारण एवं आडबंर-रहित थीं। तब लोग प्रकृति के प्रतीक चिन्हों की पूजा करते थे, जैसे सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि, पेड़, नदी, इत्यादि। अलग-अलग समुदायों के लोग अलग-अलग चिन्हों को पूजते थे। धीरे-धीरे जब समाज बड़ा हुआ तो कर्म के आधार पर वर्ण-व्यवस्था का प्रावधान हुआ। समाज को चार वर्गों में बाँटा गया-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। चूँकि ये विभाजन कर्म पर आधारित थे, न कि जन्म पर, इसलिये लोग कर्मानुसार अपने वर्ण बदल सकते थे। ब्राह्मण-वर्ण का काम था पूजा-पाठ तथा अध्ययन-अध्यापन करना, और यजमानों की दक्षिणा पर जीवन निर्वाह करना। क्षत्रियों का काम था राज्य-व्यवस्था सम्भालना तथा प्रजा की सुरक्षा करना। वैश्यों का काम था उद्योग-व्यापार सम्भालना तथा शूद्रों का काम था सबकी सेवा करना।

ब्राह्मणों को सबसे आसानी से मक्खन-मलाई उपलब्ध थी और समाज में उनका स्थान भी सर्वोपरि था, अर्थात्, जब बिना कुछ किये-धरे ही यजमान के घर की चुपड़ी रोटी

और समाज में मान-मर्यादा मिल रही हो तो कौन अपना वर्ण बदलता। अतः पूजा-पाठ के बहाने जिसने भी अपने-आप को एक बार ब्राह्मण-वर्ण में स्थापित कर लिया वह फिर कभी दूसरे वर्ण में वापस नहीं गया, चाहे वह लायक हो या नहीं। इस वर्ण द्वारा अपने को सर्वोत्तम बनाये रखने के लिये अनेकों उपक्रम किये गये और वर्ण-व्यवस्था जन्म पर आधारित कर दी गयी। अन्य तीन वर्णों को नीचा साबित करने के लिये उन्हें शिक्षा से दूर रखा गया, कर्मकाण्डों को अत्यन्त जटिल बना दिया गया, शास्त्रों और स्मृतियों में तमाम अनर्गल एवं रहस्यमय बातें प्रचारित कर दी गयीं ताकि अन्य लोग ब्राह्मणों से डरते रहें और उनसे दबकर रहें। वक्त के साथ यह व्यवस्था और भी विकृत होती चली गयी, और धीरे-धीरे साधारण वैदिक-धर्म का स्थान क्लिष्ट ब्राह्मण-धर्म ने ले लिया। कई पाखंडपूर्ण रीति-रिवाजों, परम्पराओं जैसे नरबलि, पशुबलि, मूर्तिपूजा, इत्यादि का जन्म हुआ। सभी संस्कारों को अत्यन्त जटिल बना दिया गया और ऐसी व्यवस्था कर दी गयी कि बिना पुरोहितों के ये संस्कार पूरे न हो सकें। इन संस्कारों के नाम पर लोगों को जन्म से लेकर मृत्यु तक ब्राह्मणों के पाश में जकड़ दिया गया।

क्षत्रियों द्वारा ब्राह्मणवादी व्यवस्था का विरोध

क्षत्रिय रणभूमि में अपना रक्त बहाकर अपनी मातृभूमि तथा प्रजा की रक्षा करते थे एवं दूसरों के लिये अपने प्राणों का बलिदान करते थे, अतः उनका स्थान वर्ण व्यवस्था में सर्वोपरि होना चाहिये था; परन्तु ब्राह्मणों ने क्षत्रियों को अपने से हीन बताकर वर्ण व्यवस्था में नीचे रखा। ऐसा इसलिये किया गया ताकि क्षत्रियों को काबू में रखा जा सके तथा ब्राह्मणों की प्रभुसत्ता बरकरार रहे। चूँकि अधिकतर क्षत्रिय-वर्ग अशिक्षित था इसलिये उसने सहजता से इस व्यवस्था को स्वीकार कर लिया तथा इसी का लाभ ब्राह्मण-वर्ग ने उठाया। क्षत्रिय-वर्ग को कमजोर करने के लिये उन्हें भड़काकर आपस में लड़ाया जाता रहा। कर्मकाण्डों के नाम पर उनसे कई निन्दनीय काम कराये गये तथा शास्त्रों के नाम पर उनका शोषण किया गया। लोगों के मन-मस्तिष्क पर कब्जा करने हेतु ब्राह्मणों ने शास्त्रों एवं प्राचीन ग्रन्थों में अनेक क्षेपक डाल दिये जो कि पुरोहित वर्ग की प्रभुसत्ता को कायम करने में बहुत प्रभावी रहे। उदाहरणतया-'ब्राह्मण शास्त्र' में लिखा है-

"देवाधीनम् जगत् सर्व, मंत्राधीनम् च देवताः।
ते मंत्राः ब्राह्मणाधीनम्, तस्मात् ब्राह्मण देवता।।"

अर्थात्-सारा संसार देवताओं के अधीन है, देवता मंत्रों के अधीन हैं और वे मंत्र ब्राह्मणों के अधीन हैं इसलिये ब्राह्मण ही देवता हैं।

इस प्रकार की विचारधारा प्रचारित करके पुरोहित-वर्ग ने सदैव ही अपने अनुकूल परिस्थितियां बनाये रखीं, तथा क्षत्रियों के साथ-साथ सम्पूर्ण भारतीय समाज को मानसिक तौर से अपना गुलाम बना लिया।

ऐसा नहीं है कि क्षत्रियों ने ब्राह्मणों की प्रभुसत्ता को कभी ललकारा ही नहीं। कुछ समझदार शिक्षित क्षत्रियों ने समय-समय पर ब्राह्मणों की असमतावादी सामाजिक व्यवस्था को चुनौती दी। प्राचीनकाल में ऐसा करने वाले जिन क्षत्रिय राजा का नाम सबसे पहले आता है, वो थे महर्षि विश्वामित्र जी। विश्वामित्र ने ब्राह्मणों (वशिष्टों) को चुनौती देते हुये अपने ज्ञान और तपस्या के बल पर 'महर्षि' का पद प्राप्त किया था, जो कि ब्राह्मणों के लिये आरक्षित था। इस तरह की घटनाओं का महत्त्व कम करने हेतु, पुजारी वर्ग द्वारा इन्हें तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत किया गया। इसके साथ ही ब्राह्मण-क्षत्रिय संघर्ष की घटनाओं का एक पक्षीय रूप ही ब्राह्मण लेखकों द्वारा प्रस्तुत किया गया। क्षत्रियों को छोटा साबित करने के लिये कई अतिशयोक्तिपूर्ण एवं झूठी बातों का प्रचार किया गया, जैसे कि 'परशुराम ने इक्कीस बार धरती को क्षत्रिय विहीन किया'। कुल मिलाकर संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि क्षत्रियों को काबू में रखने के लिये जो भी हथकंडे सम्भव थे, वह ब्राह्मण वर्ग द्वारा अपनाये गये।

जिस समय सम्पूर्ण भारतीय समाज ब्राह्मण-धर्म के आडंबरपूर्ण रीति-रिवाजों की आड़ में पुजारी वर्ग द्वारा ठगा जा रहा था, उसी समय ब्राह्मण-धर्म के विरोध में कई नये धर्मों एवं सम्प्रदायों का उद्भव हुआ। इनमें से कई सम्प्रदाय प्रगतिशील क्षत्रियों द्वारा बनाये गये थे, जिसमें शाक्यवंशी राजा सिद्धार्थ (जो गौतम बुद्ध भी कहलाये) का बौद्धधर्म तथा सूर्यवंश कुलज वर्धमान महावीर का जैनधर्म प्रमुख था। इन धर्मों का एकमात्र ध्येय था ब्राह्मणों के आडंबरपाश को तोड़कर पूजा-पद्धतियों का सरलीकरण करना तथा पुरोहितों के चंगुल से समाज को मुक्त कराना, ताकि हर व्यक्ति, चाहे वह धनी हो या निर्धन, ईश्वर की महाचेतना से जुड़ सके। ये धर्म (मुख्यतः बौद्ध धर्म) देश में अत्यन्त लोकप्रिय हो गये तथा सभी वर्णों के वो लोग जो ब्राह्मणों के धर्माडंबरों से त्रस्त हो गये थे, इनसे जुड़ने लगे। इनमें क्षत्रिय एवं वैश्य वर्ण के लोग प्रमुख थे। इसका परिणाम ये हुआ कि धीरे-धीरे समाज से ब्राह्मण-धर्म विलुप्त होने लगा तथा ब्राह्मणों का वर्चस्व धीरे-धीरे कम होने लगा। उस समय के लगभग सभी क्षत्रिय राजा, प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से बौद्धधर्म एवं जैनधर्म की नीतियों पर चलने लगे; उदाहरणतया, जहाँ सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य एवं कलिंग नरेश खारवेल जैनधर्म के अनुयायी हुये, वहीं सम्राट अशोक, कनिष्क, हर्षवर्धन, इत्यादि बौद्ध धर्मानुयायी हुये। इन राजाओं ने बौद्धधर्म एवं जैनधर्म का खूब प्रचार-प्रसार किया जिसके चलते ब्राह्मणों की रोजी-रोटी पर बन आई। अपनी प्रभुसत्ता समाप्त होते देख ब्राह्मण तिलमिला उठे तथा क्षत्रियों को नष्ट करने के उपक्रम करने लगे।

एक ओर जहाँ वैश्य वर्ण के लोग अपने व्यवसाय आदि तक ही सीमित थे, वहीं शूद्र-वर्ण अत्यन्त कमजोर एवं असहाय था। अतः किसी भी सामाजिक परिवर्तन का जिम्मा क्षत्रियों पर ही था। चूँकि समाज में ब्राह्मण-धर्म विरोधी लहर का नेतृत्व मुख्यतः क्षत्रिय ही कर रहे थे, इसलिए ब्राह्मणों को विशेषतः उन्हीं के प्रति द्वेष था। इसी द्वेष के कारण

पुजारी-वर्ग ने प्राचीन क्षत्रिय राजवंशों को साम-दाम-दण्ड-भेद की नीति के तहत नष्ट करने का यत्न प्रारम्भ कर दिया। कुछ क्षत्रिय वंशों को चापलूसी से भाट-चारणों ने अपने वश में कर लिया, कुछ अक्षत्रिय वर्गों को राजसत्ता देकर उन्हें क्षत्रिय बनाया गया (जैसे गुप्त राजा वास्तव में वैश्य थे), तथा कई क्षत्रिय वंशों को षड्यंत्रों द्वारा फूट पैदा करके, आपस में लड़ाकर नष्ट कर दिया गया। इसके अलावा कई वंशों को जनश्रुतियों के माध्यम से भ्रामक प्रचार करके बदनाम करने की कोशिशें की गयीं। इन षड्यंत्रों के चलते न जाने कितने प्राचीन क्षत्रिय वंश नष्ट हो गये।

प्राचीन क्षत्रिय वंशों की पहचान मिटाने हेतु ब्राह्मणों ने किस प्रकार के उद्योग किये, ये मौर्यवंश के इतिहास से स्पष्ट हो जाता है। ब्राह्मण-धर्म के पाखण्डों से व्यथित होकर सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य जैनधर्मी हो गये थे, इसलिए उनके ब्राह्मण मंत्री चाणक्य ने इस बात से रुष्ट होकर अपने एक लेख में उन्हें 'वृषल' (अर्थात् 'शूद्र') कह दिया था। कालान्तर में ब्राह्मण लेखकों ने चाणक्य के उक्त द्वेषपूर्ण लेख को आधार बनाकर क्षत्रिय शिरोमणि चन्द्रगुप्त मौर्य को शूद्र बता डाला तथा सम्पूर्ण मौर्य जाति शूद्र करार दे दी गयी। जब चक्रवर्ती सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य और अशोक जैसे महान प्राचीन क्षत्रिय राजाओं एवं उनके वंशजों को, ब्राह्मण-धर्म के पाखण्डों का विरोध करने के कारण, पुरोहितों ने शूद्र करार कर दिया तो अन्य छोटे-छोटे प्राचीन क्षत्रिय राजाओं के विषय में क्या-क्या अनर्गल प्रचार किये गये होंगे इसका अंदाजा स्वयं लगाया जा सकता हैं। अर्कवंशी राज्यों जैसे साढ़-सलेमपुर, पडरी, अयाह, अर्कौना, खागा, इत्यादि के पतन से जुड़ी किंवदंतियां इसी प्रकार के दुष्प्रचारों का नतीजा थीं, जो कि स्वार्थ-सिद्धि हेतु पुरोहित-वर्ग द्वारा प्रचारित की गयीं थीं।

गुप्तकाल के बाद का समय न सिर्फ भारत के लिये, बल्कि पूरे विश्व के लिये धर्मोन्माद का समय था। विश्व में अन्यत्र जहाँ ईसाई, मुस्लिम और यहूदी धर्मानुयायी अपने-अपने धर्मों को ऊँचा साबित करने के लिये आपस में लड़ रहे थे, वहीं भारतवर्ष में ब्राह्मण-धर्मी एवं बौद्ध-धर्मी अपना-अपना वर्चस्व बनाये रखने हेतु संघर्षरत थे। किसी भी धर्म की रक्षा एवं प्रचार-प्रसार का दायित्व चूँकि राजा का होता है इसलिये ब्राह्मण-धर्म की रक्षा हेतु पुरोहित-वर्ग को क्षत्रियों का सहयोग आवश्यक था, परन्तु तत्कालीन क्षत्रिय राजाओं का झुकाव बौद्ध धर्म की ओर अधिक था, अतः पुरोहित-वर्ग को अपनी स्वार्थ-पूर्ति हेतु उनसे किसी भी प्रकार का सहयोग मिल पाना कठिन था।

सूर्योपासकों के वंश में जन्मे सम्राट हर्षवर्धन ब्राह्मणधर्म के पाखण्डों के धुर विरोधी थे, इसलिए उन्होंने बौद्धधर्म अपना लिया था। उल्लेख मिलता है कि बौद्ध-धर्म को समर्थन देने के कारण कट्टरवादी ब्राह्मण हर्षवर्धन के भी विरोधी हो गए थे, तथा कन्नौज में आयोजित एक धार्मिक सभा के दौरान उनके सभा-मंच में आग लगाकर उनकी हत्या का भी प्रयास किया गया था। इस घटना पर कड़ा रुख अपनाते हुए सम्राट हर्षवर्धन ने कई षड्यंत्रकारी ब्राह्मणों को कठोर दण्ड दिया था। एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा प्रकाशित

कक्षा-11 की 'प्राचीन भारत' (लेखक-श्री आर.एस. शर्मा, 1999 संस्करण) नामक इतिहास पुस्तक के पृ. 207 पर भी इसका उल्लेख है-

"Suddenly the great tower caught fire and there was an attempt to assassinate Harsha. Harsha then arrested 500 brahmanas and banished them and some of them were also executed."

अनुवाद-अचानक (सभागार के) विशाल स्तम्भ में आग लग गई और हर्ष की हत्या करने का प्रयास किया गया। हर्ष ने तब 500 ब्राह्मणों को बंदी बनाकर उन्हें राज्य से निष्कासित कर दिया और उनमें से कुछ को मृत्युदण्ड भी दिया गया।

यह घटना ब्राह्मण-क्षत्रिय संघर्षों की पराकाष्ठा थी तथा ब्राह्मणों के लिए एक चुनौती थी। हर्षवर्धन के शासनकाल में पैदा हुई विपरीत परिस्थितियों ने ब्राह्मणों को ये जता दिया था कि क्षत्रिय-सहयोग के बिना अपनी प्रभुसत्ता को बरकरार रखना उनके लिए कठिन है। अपनी प्रभुसत्ता को पुनः कायम करने के उद्देश्य से बौद्धिक अपराधियों ने चिन्तन बैठकें कर-करके रास्ता खोजना प्रारम्भ कर दिया और परिणामस्वरूप उपरोक्त घटना के सौ वर्षों के भीतर ही उन्होंने छल-छद्मों के इस्तेमाल से अपने इशारों पर नाचने वाले 'नव-क्षत्रिय' वर्ग की स्थापना कर दी।

राजपूत उद्भव तथा हिन्दूधर्म का जन्म

हर्षवर्धन की मृत्यु के बाद भारत में मची राजनीतिक एवं सामाजिक उथल-पुथल का लाभ उठाते हुये पुरोहित-वर्ग ने कुछ अंत्यज जातियों (जिनमें कई म्लेच्छ (विदेशी) जातियाँ जैसे पार्थियन, सीथियन, हूण, यूनानी, इत्यादि भी शामिल थीं) का शुद्धिकरण एवं सांस्कृतिकरण करके उन्हें एक नई क्षत्रिय जाति के रूप में स्थापित कर दिया, जिन्हें 'राजपूत' कहा गया। आठवीं शताब्दी से पूर्व किसी भी ग्रन्थ अथवा शास्त्र में राजपूतों का उल्लेख नहीं मिलता, जिससे यह सिद्ध होता है कि राजपूत जाति क्षत्रिय-वर्ण के अन्तर्गत बाद में सम्मिलित की गयी। राजपूतों को क्षत्रियों के रूप में स्थापित करने के लिये भाटकृतियों में उनकी उत्पत्ति* के संबंध में अतिशयोक्तिपूर्ण बातें लिखी गयीं तथा 'राजपूत' शब्द धीरे-धीरे 'क्षत्रिय' का पर्याय बन गया। नवनिर्मित क्षत्रिय (राजपूत) मुख्यतः ब्राह्मण-धर्मानुयायी थे तथा पुरोहित-वर्ग की प्रभुसत्ता के कट्टर समर्थक थे।

---

*राजपूतों की उत्पत्ति से संबंधित पुरोहितों द्वारा रचित एक रहस्यमयी कथा बहुत प्रसिद्ध है। कथा के अनुसार जब परशुराम ने धरती को क्षत्रिय विहीन कर दिया तो धरती की रक्षा करने के उद्देश्य से पण्डितों ने आबू पर्वत पर एक महायज्ञ किया। उस यज्ञ से चार योद्धा उत्पन्न हुये, जिनके वंशजों को 'राजपूत' कहा गया। चूँकि ये अग्नि से पैदा हुये थे इसलिये इन्हें अग्निवंशी क्षत्रिय कहा गया। इस मनगढ़न्त फर्जी कथा को राजपूत लोग बड़ी शान से सुनाते हैं और इसी आधार पर स्वयं को क्षत्रिय कहते हैं। क्या यज्ञ कुण्ड से किसी मानव की उत्पत्ति हो सकती है? आग से मनुष्य बन जाए, ऐसा तो किसी भी वैज्ञानिक क्रिया से संभव नहीं है, पर हिन्दू समाज के ढोंगी पुरोहितों के लिए शायद कुछ भी असंभव नहीं। इसे एक विडम्बना ही कहा जायेगा कि जिनकी उत्पत्ति पर ही एक प्रश्न-चिह्न लगा हुआ है वो तो बड़ी शान से स्वयं को 'ठाकुर' और 'राजपूत' कहते हुये ऐंठते फिरते हैं, जबकि देश के विभिन्न हिस्सों पर सदियों राज करने वाले अर्कवंश जैसे प्राचीन क्षत्रिय राजवंशों के वंशज आज स्वयं को 'क्षत्रिय' कहने में भी सकुचाते हैं।

जिस समय राजपूत, ब्राह्मणों की साम-दाम-दंड-भेद नीति के सहारे अपनी शक्ति का विकास कर रहे थे उसी समय आदि-शंकराचार्य ने ब्राह्मण-धर्म का पुनरोद्धार कार्यक्रम प्रारम्भ किया। उन्होंने ब्राह्मण-धर्म का सरलीकरण करके तथा देश की स्थानीय परम्पराओं को मिलाकर एक समग्र धर्म की नींव रखी, जिसे बाद में **हिन्दू-धर्म** कहा गया।

इन सब घटनाओं का मिलाजुला असर यह हुआ कि प्राचीन क्षत्रिय वंश या तो धीरे-धीरे नष्ट होने लगे या फिर राजपूतों के साथ रोटी-बेटी का संबंध जोड़ने के कारण स्वयं भी 'राजपूत' कहलाने लगे। राजसी संरक्षण समाप्त होते ही बौद्धधर्म एवं जैनधर्म का वर्चस्व समाप्त हो गया। धर्म की ठेकेदारी फिर से पुरोहित-वर्ग के हाथों में आ गयी। अब कोई भी गलती न करते हुये पुरोहितों ने 'नव-क्षत्रियों' को अपने हाथों की कठपुतली बना लिया। क्षत्रिय-शक्ति फिर से न उभरे इसका प्रबन्ध पुराहितों द्वारा बड़े सलीके से किया गया। राजपूतों में मद्यपान, जुआखोरी, विलासिता, मिथ्याभिमान आदि दुष्प्रवृत्तियों को बढ़ावा दिया गया। यह कार्य भाट-चारणों ने बखूबी किया। इसके साथ ही अधिकतर राजपूतों को अशिक्षित रखा गया, जिससे राजपूत मानसिक तौर से कमजोर हो गये और दिमाग के बजाए दिल से काम लेने लगे। झूटे दम्भ के चलते ही वे जरा-जरा सी बात पर मरने-मारने पर उतारू हो जाते थे।

बाह्य आक्रमणों का प्रभाव

भारतवर्ष पर जब विदेशियों के आक्रमण शुरू हुये, तो पुरोहित-वर्ग की स्वार्थपूर्ण नीतियों के कारण भारतीय समाज इतना अधिक बँट चुका था कि एकजुटता के अभाव में भारतीय किसी भी आक्रमण का जवाब नहीं दे सके। सभी क्षत्रिय राजवंश अपने-अपने स्तर पर आक्रमणकारियों से लोहा लेते रहे और मुँह की खाते रहे। जिन राजाओं ने विदेशियों की अधीनता स्वीकार कर ली उनका धनबल सलामत रहा, किन्तु जिन्होंने अधीनता स्वीकार नहीं की उनका राजपाट छीनकर उन्हें बर्बाद कर दिया गया।

इसे भारत देश का दुर्भाग्य ही कहा जायेगा कि ऐसे संकट के समय में सभी क्षत्रियों में एकता पैदा करने के बजाए, समाज का ठेकेदार पुरोहित-वर्ग क्षत्रियों में फूट डालने एवं विदेशी आक्रमणकारियों से गुप्त समझौते करने में व्यस्त रहा। इस प्रकार पुरोहितों ने लगभग हर काल में, चाहे वह वैदिक-काल हो, गुप्तकाल हो या मुगलकाल, अपने अनुकूल परिस्थितियाँ बनाये रखीं, तथा इसके लिये तरह-तरह के हथकंडे अपनाते रहे। इन सबके चलते भारतीय समाज को अत्यधिक हानि उठानी पड़ी।

भारतीय समाज के विघटन का लाभ विदेशियों ने किस प्रकार उठाया इसके उल्लेखों से पूरा भारतीय इतिहास भरा पड़ा है, परन्तु एक उदाहरण विशेष रूप से उल्लेखनीय है। सन् 1761 ई. की बात है, पानीपत के मैदान पर अफगान आक्रमणकारी अहमद शाह अब्दाली की सेना और मराठों के बीच घमासान युद्ध चल रहा था। वीर मराठे बहादुरी के साथ दुश्मनों से लोहा ले रहे थे और अफगानों के सभी दाँव-पेंच बेअसर सिद्ध हो रहे थे।

एक वक्त तो ऐसा लगने लगा था कि मराठे जल्दी ही अफगान सेना की धज्जियां उड़ा देंगे। ऐसे ही वक्त में एक दिन शाम को, युद्ध-विराम के समय, अब्दाली निरुत्साहित एवं चिंतित अवस्था में अपने सेनापति के साथ टहल रहा था कि अचानक उसकी नजर दूर जलती हुयी मशालनुमा रोशनियों पर पड़ी। उसने इस विषय में अपने सेनापति से पूछा तो सेनापति ने उसे बताया कि वहाँ पर मराठों का विश्राम शिविर है तथा मराठा सैनिक अपना-अपना चूल्हा जलाकर अपना भोजन तैयार कर रहे हैं। ये रोशनियां उसी से पैदा हो रहीं हैं। यह सुनकर अब्दाली को घोर आश्चर्य हुआ तथा उसने विस्मित स्वर में पूछा, कि सभी सैनिकों की रसोई एक जगह तैयार होने के बजाए अलग-अलग क्यों बन रही है? इस पर उसका सेनापति बोला कि मराठे छुआछूत मनाते हैं, तथा एकसाथ बैठकर अथवा एक दूसरे का छुआ भोजन ग्रहण नहीं करते। इतना सुनते ही अब्दाली की आँखों में एक चमक सी आ गयी, मानो उसे खोई हुयी कोई बहुमूल्य वस्तु दोबारा मिल गयी हो। अत्यन्त उत्साहित स्वर में वह अपने सेनापति से बोला कि उसने यह सब उसे पहले क्यों नहीं बताया। अब्दाली बोला कि जिस क़ौम में और जिस मुल्क़ में लोग एकसाथ मिल-बैठकर खाना नहीं खा सकते, और जहाँ आदमी ही आदमी के लिये अछूत है, वहाँ लोग एकसाथ जंग क्या करेंगे। ऐसे समाज की एकता सिर्फ एक दिखावा मात्र है, जिसे थोड़े से प्रयास से ही छिन्न-भिन्न किया जा सकता है। ऐसी क़ौम और ऐसे मुल्क़ को पराजित करना और गुलाम बनाना कोई मुश्किल काम नहीं है।

इतिहास गवाह है कि किस प्रकार मराठों के आपसी मतभेदों का लाभ उठाकर, हार के कगार पर पहुँची अब्दाली सेना ने एक नये उत्साह के साथ मराठों के साथ युद्ध किया और मराठा सेना को बुरी तरह पराजित कर दिया। क्षत्रियों के आपसी द्वेष और रूढ़िवादिता के कारण ही विघटनकारी प्रवृत्तियाँ एवं बाह्य शक्तियाँ सदैव भारतीय समाज पर हावी रहीं तथा क्षत्रिय वंशों को तोड़ती और नष्ट करती रहीं।

पुरोहित-वर्ग ने नष्ट होते, टूटते क्षत्रिय वंशों के प्रति कभी भी वास्तविक सहानुभूति प्रकट नहीं की और न ही उन्हें सम्भालने का कोई प्रयत्न किया। यदि पुरोहित-वर्ग के मन में क्षत्रियों के प्रति वैमनस्यता न होती तो क्या वे धर्म-परिवर्तित अथवा कमजोर हो गये क्षत्रियों का मार्गदर्शन नहीं करते? इसके विपरीत कमज़ोर पड़ गये क्षत्रिय वंशों की कमर तोड़ने में पुरोहित-वर्ग ने कोई कसर नहीं छोड़ी और उनके खिलाफ भ्रामक प्रचार करके उन्हें और भी कमजोर कर दिया। निर्बल क्षत्रियों के स्वाभिमान एवं आत्मविश्वास को नष्ट करने हेतु पुरोहित-वर्ग द्वारा सदैव छुआछूत, क्रूर व्यंग्य-वचनों एवं घृणा-मूलक पैनी मार जैसे घातक अस्त्रों का इस्तेमाल किया जाता रहा।

स्वार्थपूर्ण सामाजिक व्यवस्था

पुरोहित-वर्ग की गिरगिटिया प्रवृत्ति के कई उदाहरण भारतीय इतिहास में उपलब्ध हैं। इस वर्ग ने जिसे चाहा उसका वर्ण ऊँचा कर दिया और जिसे चाहा उसे नीचा कर दिया। जब

'कायस्थ' जाति का उद्भव हुआ तो पुरोहित वर्ग ने कायस्थों के खिलाफ कई लांछन लगाये। शास्त्रों में उनके विरुद्ध कई झूठी-मूठी बातें प्रचारित की गयीं। उन्हें 'नीच कुल', 'वर्णसंकर' इत्यादि कहा गया, परन्तु जब यही कायस्थ जाति विद्या के बल पर धनधान्य से परिपूर्ण हो गयी तथा पुरोहितों को प्रचुर दक्षिणा देने में समर्थ हो गयी तो उसे ऊँचे वर्ग में सम्मिलित कर लिया गया।

इसी प्रकार जब मराठा शिरोमणि शिवाजी ने मराठा राज्य स्थापित करने के पश्चात् अपना राज्याभिषेक करवाने का प्रयास किया, तो महाराष्ट्र के पुरोहित-वर्ग ने उन्हें निम्नकुल का बताते हुये उनका विरोध किया और कोई भी उनका राजतिलक करने को तैयार न हुआ। अंत में मजबूर होकर शिवाजी ने बनारस से गागभट्ट नामक पंडित को बुलवाकर अपना राज्याभिषेक करवाया। बाद में जब मराठा राज्य शक्तिशाली एवं विशाल हो गया तथा ब्राह्मणों को संरक्षण देने लगा तब पुरोहित-वर्ग ने मराठा क्षत्रियों को उत्तम कुल का मान लिया। पुरोहित-वर्ग के इस छद्म वेष के बारे में स्वयं आदि-शंकराचार्य ने कहा था, 'उदर निमित्तं कृत बहुभेषम्' अर्थात् अपना पेट भरने के लिये पुरोहित-वर्ग समय-समय पर अपना चिंतन एवं चरित्र बदलता रहा है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि भारतीय समाज में पुरोहित-वर्ग ने कुछ ऐसी मानसिकता पैदा कर दी कि जिसे उन्होंने ऊँचा कहा वे ऊँचे हो गये तथा जिन्हें नीचा कहा, वे नीचे। सामाजिक व्यवस्था की इस स्वार्थपूर्ण नीति का प्रयोग करके पुरोहित-वर्ग ने सभी जातियों (विशेषतः नीचे से ऊपर जाने वाली जातियों) के मन-मस्तिष्क पर अपना कब्जा कर लिया।

ब्रिटिशकाल में जब पुनः राजनैतिक एवं सामाजिक उत्थानोपतन हुआ तथा जमींदारी-राज कायम हुआ तो जमींदार बने लोग स्वयं को 'ठाकुर' (अर्थात् 'स्वामी') कहने लगे। बाद में यही समझा जाने लगा कि सिर्फ 'ठाकुर' लोग ही क्षत्रिय हैं, जबकि ऐसा कतई नहीं है। गुजरात, बिहार, बंगाल आदि के ब्राह्मण और कायस्थ जमींदार भी स्वयं को 'ठाकुर' कहते थे, अतः 'ठाकुर' शब्द जाति-सूचक होने के बजाए पद एवं सत्ता का परिचायक अधिक है। जब पुरोहित-वर्ग द्वारा समर्थित शक्तिशाली 'ठाकुरों' को ही अनन्य रूप से क्षत्रिय माना जाने लगा तो कृषि करने वाली कुछ कमजोर क्षत्रिय जातियों को समाज के ठेकेदार 'अक्षत्रिय' कहने लगे। आजादी के बाद जब देश में प्रजातंत्र की स्थापना हुयी, तो शासन द्वारा शैक्षिक एवं आर्थिक रूप से कमजोर कुछ क्षत्रिय जातियों को (शैक्षिक एवं आर्थिक) मजबूती प्रदान करने के उद्देश्य से 'पिछड़ा वर्ग' की सूची में डाल दिया गया।

अब समाज के ठेकेदार यह कहेंगे कि जब कर्म ही क्षत्रियों जैसे नहीं तो कृषि करने वाली क्षत्रिय मूल की जातियों को 'क्षत्रिय' क्यों कहा जाए? इस प्रश्न का उत्तर पाने से पहले समाज के ठेकेदारों को यह स्पष्ट करना चाहिये कि जाति-वर्ग विभेद जन्म पर आधारित है या कर्म पर। यदि कर्म ही जातियों का आधार है और जन्म से उसका कोई

वास्ता नहीं है तो फिर दूसरे धन्धों में लगे ब्राह्मणों को 'ब्राह्मण' क्यों कहा जाए? परन्तु, यदि जन्म से जाति का निर्धारण होता है तो क्षत्रिय मूल की कृषि आदि कार्य करने वाली क्षत्रिय जातियों को 'क्षत्रिय' क्यों न समझा जाए? इस प्रश्न का उत्तर देना शायद समाज के ठेकेदारों के वश की बात नहीं है क्योंकि सामाजिक व्यवस्था को उन्होंने अपने मन मुताबिक जैसे चाहा है वैसे तोड़ा-मरोड़ा है।

भारतीय मानव त्रासदी एवं अतिवाद

यूँ तो मानव-त्रासदी की ऐतिहासिक घटनाएँ विश्व के कई देशों में हुई हैं, जैसे-जर्मनी में नाज़ीवाद, इटली में फ़ासीवाद, अमरीका और यूरोप में नस्लवाद, दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद, सोवियत संघ में स्टालिन का अतिवाद, इत्यादि, परन्तु जन्म को आधार बनाकर मानव द्वारा मानव को कुचलने का जो नंगा नाच हिन्दुस्तान में खेला जाता रहा है उसका उदाहरण मानव-इतिहास में कहीं और मिलना मुश्किल है। एक ओर जहाँ विश्व के अन्य देशों ने पूर्व में हुई मानवता विरोधी घटनाओं पर पश्चाताप करते हुए उन्हें फिर कभी न दोहराने का संकल्प लिया वहीं भारतीय अतिवादियों को अपने दुष्कृत्यों पर कभी भी कोई पछतावा नहीं रहा, जो कि अत्यधिक चिंता और ग्लानि का विषय है। हालाँकि विभिन्न कालों में अनेक भारतीय मनीषी व समाज-सुधारक समाज की विकृतियों को दूर करने हेतु प्रयासरत रहे तथा लोगों को अन्यायपूर्ण व्यवस्था के दुष्परिणामों के प्रति आगाह करते रहे, परन्तु समाज में मौजूद भेदभाव की गहरी जड़ों के चलते उनके ये प्रयास भी पूर्णतया सफल न हो सके।

स्वामी विवेकानन्द ने समाज के ठेकेदारों की हिन्दूधर्म के साथ खिलवाड़ करने की प्रवृत्ति से दुःखी होकर, उन्हें इन दुश्चेष्टाओं से दूर रहने हेतु कई बार आगाह किया था। हिन्दूधर्म के विरोधाभास का उल्लेख करते हुये उन्होंने कहा था- *"हिन्दू धर्मग्रन्थों में मानव की महिमा का जैसा गुणगान है, वैसा संसार के किसी भी धर्मग्रन्थ में नहीं मिलता है। मगर संसार का कोई भी धर्म, निरीह मानव की गर्दन पर पैर रखकर ऐसे नहीं कुचलता जैसे हिन्दूधर्म में कुचला गया है।"* उनके अनुसार जो धर्म पददलित एवं पीड़ित मनुष्यों के प्रति सेवा-भाव पैदा नहीं कर सकता वह निरर्थक है। रामकृष्ण मिशन की स्थापना के उद्देश्य पर बोलते हुये उन्होंने कहा था- *"यह पागलपन है कि इतनी बड़ी संख्या में हम संन्यासी यत्र-तत्र भ्रमण करते हैं और लोगों को आध्यात्म विद्या की शिक्षा देते हैं। क्या हमारे गुरुदेव यह नहीं कहा करते थे कि 'भूखे भजन न होय गोपाला'। ये* (गरीब एवं निरीह) *लोग अज्ञान के कारण पशु जीवन व्यतीत कर रहे हैं। हम सदैव ही इनका खून चूसते रहे हैं और पैरों तले कुचलते रहे हैं। भारत में सभी मुसीबतों की जड़ यही है। हमने राष्ट्रीय व्यक्तित्व खो दिया है और हमें राष्ट्र का खोया हुआ व्यक्तित्व लौटाना होगा।"*

हिन्दूधर्म की ठेकेदारी करने वालों की निगाहें आज भी हिन्दूधर्म की आन्तरिक कमियों एवं सामाजिक अन्तर्विरोधों पर नहीं पड़तीं। एक तरफ जहाँ हिन्दुत्व की पैरवी करने

वाले 'हिन्दू-हिन्दू' करके जनमानस को भड़काते हैं, वहीं दूसरी तरफ कमजोर और दलित हिन्दुओं के प्रति दुर्भावना रखते हैं। जब भी किसी ने भारतीय सामाजिक व्यवस्था को सुधारने का प्रयास किया, चाहे वह स्वामी विवेकानन्द हों, स्वामी दयानन्द सरस्वती हों, ज्योतिबाफुले हों, पं. बलवंत तिलक हों या गांधीजी हों, इन मुखौटाधारी हिन्दुत्ववादियों ने उनका सदैव पुरजोर विरोध किया। ऐसे स्वार्थी लोगों के पीछे भागने के बजाए उनका बहिष्कार होना चाहिये क्योंकि हिन्दू समाज के सबसे बड़े दुश्मन यही लोग हैं।

अर्कवंशी क्षत्रियों का पतन-आखिर क्यों ?

अर्कवंशी क्षत्रियों की वर्तमान दीन-हीन स्थिति का कोई एक कारण नहीं बताया जा सकता। अर्कवंशी क्षत्रियों के संदर्भ में जब हम प्रारम्भ से लेकर अब तक के सामाजिक एवं राजनैतिक परिवर्तनों एवं घटनाओं का समग्र रूप से अवलोकन करते हैं तो कई बातें स्वतः ही स्पष्ट नजर आती हैं। आइये अर्कवंशियों के पराभाव से जुड़ी सभी घटनाओं एवं उनके कारणों को समझने का प्रयास करते हैं।

प्राचीनकालीन परिवर्तन- अर्कवंश एक प्राचीन भारतीय क्षत्रिय राजवंश है, अतः इसका इतिहास भारतीय इतिहास से अलग नहीं हो सकता। भारतवर्ष में होने वाले सामाजिक और राजनैतिक परिवर्तनों का प्रभाव अर्कवंश पर भी पड़ा। अर्कवंशी क्षत्रिय मूलतः सूर्य के उपासक थे तथा ब्राह्मण-वर्ग के आडंबरों एवं पाखंडपूर्ण कृत्यों के विरोधी थे। प्राचीनकाल में हिन्दूधर्म नाम की कोई चीज नहीं थी तथा सम्पूर्ण भारत में वैदिक-धर्म के अतिरिक्त सैकड़ों धर्म, स्थानीय परम्परायें एवं पूजा-पद्धतियां प्रचलित थीं। प्रत्येक राजा की प्रजा तरह-तरह के धार्मिक मतों एवं आस्थाओं में बँटी हुयी थी। राजा किसी भी धर्म का अनुयायी हो, उसे अपनी सम्पूर्ण प्रजा की धार्मिक भावनाओं का आदर करना पड़ता है और ऐसा न होने पर कोई भी राजा सुचारु रूप से शासन नहीं चला सकता। यही कारण था कि स्वयं सूर्य उपासक होते हुये भी सूर्यवंशी (अर्कवंशी) क्षत्रिय राजा सभी धर्मों एवं मतों का आदर करते थे। उनकी यही मानवतावादी एवं समतावादी प्रवृत्ति ब्राह्मण-वर्ग को अखरती थी क्योंकि ये नीतियां इस वर्ग की प्रभुसत्ता को सीधी चोट पहुँचाती थीं।

भारतीय समाज में जब ब्राह्मण-धर्म विरोधी स्वर मुखर हुआ और पुजारी वर्ग की प्रभुसत्ता को ललकारा गया तो इस विरोध का नेतृत्व मुख्यतः सूर्यवंशी क्षत्रिय (जिनमें शाक्यवंशी क्षत्रिय प्रमुख थे) ही कर रहे थे। अतः उस समय की लगभग सभी क्षत्रिय जातियों के प्रति ब्राह्मणों में द्वेष पैदा हो गया था। ब्राह्मणों को शाक्यवंशी क्षत्रियों से विशेष बैर था, क्योंकि इसी वंश के एक कुलज 'अर्कबन्धु' गौतमबुद्ध ने ब्राह्मण धर्म का लगभग अस्तित्व ही समाप्त कर दिया था। चूँकि अर्कवंशी क्षत्रिय परम्परा भी सूर्य-शाक्यवंश परम्परा का एक अभिन्न हिस्सा थी इसलिये अर्कवंशी क्षत्रियों के प्रति ब्राह्मणों का द्वेष स्वाभाविक

था। इसी विद्वेष के चलते ब्राह्मणों ने कभी भी अर्कवंशी क्षत्रियों का साथ नहीं दिया। जब 'राजपूत' जाति का उद्भव हुआ और प्राचीन क्षत्रिय राजवंश अपनी पहचान खोने लगे तब अर्कवंशी क्षत्रिय राजा भी पुरोहित-वर्ग के षड्यंत्रों का शिकार होने लगे।

मध्यकालीन परिवर्तन- जब तुर्क आक्रमणकारी भारत में आये, तो उनका सीधा मुकाबला क्षत्रियों के साथ था। तुर्क आक्रमणकारी तमाम राज्यों को नष्ट-भ्रष्ट करते हुये, राजपूतों एवं अन्य क्षत्रियों को हराते हुये भारत में अपनी शक्ति बढ़ाते चले गये। किसी भी जंग को जीतने के लिए तीन चीजें सबसे आवश्यक हैं-शक्ति, साहस और एकता। ये तीनों ही चीज़ें तुर्कों के पास थीं। शक्ति और साहस तो भारतीय क्षत्रियों के पास भी कम न था, परन्तु उनमें एकता का नितान्त अभाव था। एकता हो तो शक्ति और साहस के गुण स्वयं आ जाते हैं, किन्तु एकता के अभाव में शक्ति और साहस निष्प्रभावी हो जाते हैं। चूँकि क्षत्रिय समाज उस समय तक पूर्णतया बँट चुका था और कोई भी राजा किसी अन्य का साथ देने को तैयार नहीं था, इसलिए क्षत्रिय बिना संगठित हुये ही विदेशियों से लोहा ले रहे थे। इस विघटन का सबसे बड़ा उदाहरण है तराइन का द्वितीय युद्ध। सन् 1192 में, तराइन के मैदान में जहाँ एक तरफ चौहान, खंगार तथा अन्य क्षत्रिय विदेशियों से टक्कर ले रहे थे वहीं गहरवार वंशी (जयचंद्र के नेतृत्व में) विदेशियों का साथ दे रहे थे। क्षत्रियों के बँटने का सबसे बड़ा नुकसान प्राचीन क्षत्रिय वंशों को उठाना पड़ा। आपसी फूट का रोग अर्कवंशी क्षत्रियों को भी लग चुका था। यही कारण था कि अर्कवंशी क्षत्रियों को अकेले ही विदेशियों के खिलाफ युद्ध करने पड़े। इसके अलावा, एक-आध अपवादों को छोड़कर अर्कवंशी क्षत्रियों का साथ किसी ने नहीं दिया।

कोई जाति चाहे कितनी ही वीर क्यों न हो, सिर्फ अपने ही बल पर शक्तिशाली शत्रुओं से ज्यादा समय तक टक्कर नहीं ले सकती। अर्कवंशी क्षत्रिय अपने-अपने राज्यों में विदेशियों के विरुद्ध बड़ी वीरता से लड़े, किन्तु संख्या के आगे वीरता कब तक टिकती। शक्तिशाली तुर्कों ने हर प्रकार के दांव-पेंच इस्तेमाल कर एक-एक करके सभी अर्कवंशी क्षत्रिय राजाओं को पराजित कर दिया तथा उनका राजपाट छीनकर उन्हें निर्बल बना दिया। युक्त-प्रान्त में शासन करने वाले अर्कवंशी क्षत्रियों को जब तुर्कों ने सत्ताच्युत किया तब इनके ऊपर बहुत ही अत्याचार हुये। बहुत से अर्कवंशी क्षत्रियों को जबरन मुसलमान बना दिया गया, तथा जो बच गये थे वे अपनी शक्ति को पुनः संगठित करने का सपना संजोए इधर-उधर बिखर गये। इस प्रकार यह स्वतंत्रता प्रेमी एवं देशभक्त क्षत्रिय वंश दर-बदर की ठोकरें खाने को मजबूर हुआ। ये लोग अपना तथा अपने परिवार का भरण-पोषण करने के लिये, जो भी काम मिला उसे करके अपना जीवन-यापन करने लगे। ऐसी विपत्ति के समय उनका साथ देने के बजाए पुरोहित-वर्ग ने न सिर्फ उनका विरोध किया, बल्कि

अर्कवंशी क्षत्रियों की दीन-हीन दशा का विभिन्न प्रकार से लाभ उठाकर उनका शोषण भी किया। सत्ताहीन एवं श्रीहीन हो गये अर्कवंशी क्षत्रियों से धीरे-धीरे उनके अपने ही सशक्त क्षत्रिय भाइयों ने भी रिश्ता तोड़ लिया तथा इस वीर क्षत्रिय वंश को बेगाना बना दिया। किसी ने सच ही कहा है, *"बन जाते हैं सब रिश्तेदार जब 'ज़र' पास होता है, गरीबी में टूट जाता है वो भी रिश्ता जो ख़ास होता है"*। इस प्रकार विपरीत परिस्थितियों के मारे अर्कवंशी क्षत्रिय, कालान्तर में 'अर्क' से 'अरक', फिर 'अरख' और बाद में 'आरख' कहलाने लगे।

इतिहास लोप- शासन-सत्ता छिन जाने के बाद अर्कवंशी क्षत्रिय शक्तिविहीन हो गये तथा जीविका चलाने के लिये कृषि आदि कार्य करने लगे। चौदहवीं-पन्द्रहवीं शताब्दी के बाद अर्कवंशी क्षत्रियों और तुर्कों के बीच हुये संघर्ष का कोई विशेष लेखा-जोखा नहीं मिलता, जो कुछ भी रहा होगा वह शायद नष्ट हो गया। अन्य प्राचीन क्षत्रियों की तरह ही अर्कवंशी क्षत्रियों का इतिहास भी बौद्धधर्म के लेखकों एवं विद्वानों द्वारा सही ढंग से लिपिबद्ध किया गया होगा, जिसके संकेत मिलते हैं। अपना शासन कायम करने के बाद विदेशी तुर्क आक्रमणकारियों ने अनेक बड़े-बड़े बौद्ध पुस्तकालयों, जैसे उद्दान्तपुरी विहार का पुस्तकालय, नालन्दा विश्वविद्यालय, विक्रमशिला विश्वविद्यालय आदि कई विश्वविद्यालयों एवं पुस्तकालयों को भष्माभूत कर दिया। कहते हैं कि बख़्तियार ख़िलजी के आदेश पर जब नालन्दा और उद्दान्तपुरी के पुस्तकालयों को जलाया गया तो वे पूरे एक महीने तक सुलगते रहे। पाठक स्वयं अंदाजा लगा सकते हैं कि कितनी पुस्तकें रही होगीं उन पुस्तकालयों में। इस तरह न जाने कितने राजवंशों का इतिहास एवं अन्य बहुमूल्य जानकारियां धर्मोन्मादियों द्वारा नष्ट कर दी गयीं। गरीबी एवं अशिक्षा के चलते अर्कवंशी क्षत्रियों की भावी पीढ़ियां अपना इतिहास भूलती चली गयीं और धीरे-धीरे उनका इतिहास-बोध लुप्त हो गया। इतिहास-बोध लुप्त होने से उनका सामाजिक आधार समाप्त हो गया और वे हीन एवं हेय स्थिति में पहुँचा दी गयीं। पुरोहित-वर्ग ने अपने स्वार्थी स्वभाव एवं संकुचित प्रवृत्ति के कारण कभी भी उनसे वास्तविक सहानुभूति नहीं दिखायी और न ही उनका उचित मार्गदर्शन किया।

आधुनिक परिवर्तन- अंग्रेजों का शासन कायम होने तक अर्कवंशी बहुत ही निर्बल एवं गरीब हो चुके थे। उनकी सबसे बड़ी दुश्मन थी उनकी अशिक्षा, जिसके चलते वह न सिर्फ खुद को भूल गये बल्कि दूसरों के बहकावे में आकर पथविहीन हो गये। उन्होंने दूसरों के लाक्षनों का खंडन करने के बजाए उन्हें आत्मसात करना प्रारम्भ कर दिया और स्वयं को हीन समझने लगे। ब्रिटिशकाल (1928 ई.) में लिखे गये 'जाति अन्वेषण' नामक ग्रन्थ के भाग-एक में पंडित छोटेलाल शर्मा ने भी विद्यान्यूनता को ही अर्कवंशियों की बरबादी का कारण बताया है। शिक्षा की कमी के कारण ही अर्कवंशी क्षत्रिय आज भी गरीब हैं, और

गरीबी इन्सान से कुछ भी करा सकती है। 'बुभुक्षितं किमं न करोति पापं' (भूखा क्या न करता), इस लोकोक्ति के अनुसार अर्कवंशी क्षत्रिय परिस्थितियों-वश अपने गौरव को भूलते चले गये।

हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि अर्कवंशी क्षत्रियों की बरबादी का कारण दूसरों के अलावा स्वयं अर्कवंशी भी हैं। अर्कवंशी क्षत्रिय आज भी विद्या के महत्त्व को नहीं समझते हैं तथा पढ़ने-पढ़ाने में आनाकानी करते हैं। समाज में विद्या एवं विद्वानों की कमी के कारण ही आज भी अर्कवंशी समाज दिशाविहीन है। यह शिक्षा की ही कमी है जिसके कारण आज अर्कवंशी क्षत्रिय अपने विषय में उठने वाले किसी भी प्रश्न का सही उत्तर नहीं दे पाते हैं और न ही दूसरों के आक्षेपों का खण्डन कर पाते हैं। अब वक्त आ गया है जब अर्कवंशी क्षत्रियों को अपनी नींद त्यागकर अपने उत्थान के लिए कदम उठाने होंगे। उन्हें अपने बच्चों को कोई भी त्याग करके शिक्षित एवं सुसंस्कारित बनाना होगा, ताकि वे राष्ट्र निर्माण में अपना योगदान दे सकें। यदि ऐसा न हुआ तो अर्कवंशी क्षत्रियों का सूर्य सदा के लिये अस्त हो जायेगा।

स्वतंत्रता के बाद हुये सामाजिक पतन का मुख्य कारण- यद्यपि ब्रिटिशकाल से पूर्व ही अर्कवंश दीन-हीन अवस्था में पहुँच चुका था, परन्तु उसका स्वाभिमान कुछ हद तक कायम था। आजादी से पूर्व अर्कवंशी समाज के कुछ विद्वान, जाति-प्रेमी महानुभावों ने सम्मेलनों एवं जातीय सभाओं के माध्यम से अपने समाज में जागरुकता पैदा करने के प्रयास किये। इन सम्मेलनों एवं सभाओं में अर्कवंशियों के अतिरिक्त अन्य वंशों के क्षत्रिय एवं विद्वान ब्राह्मण भी शामिल होते थे, तथा अर्कवंशियों को उनकी गौरवशाली पृष्ठभूमि से अवगत कराकर उन्हें प्रोत्साहित करते थे। आजादी के बाद भी कुछ वर्षों तक यह सिलसिला चलता रहा और इसके अच्छे परिणाम भी सामने आये, परन्तु 1955-60 के बाद अचानक ही अर्कवंशियों के सामाजिक विकास की गति मन्द पड़ने लगी।

अर्कवंश का सामाजिक पतन, मुख्यतः, सन् 1960 के बाद ही प्रारम्भ हुआ, क्योंकि आजादी के बाद जहाँ अन्य जातियों ने अपनी प्रगति के लिये अनेक कदम उठाये वहीं, कुछ एक प्रयासों को छोड़कर, अधिकतर अर्कवंशी अपनी शैक्षिक, राजनैतिक एवं आर्थिक प्रगति के प्रति उदासीन रहते हुये चिरनिद्रा में लीन रहे। उनकी इसी सुसुप्तावस्था का लाभ दूसरों ने उठाया। दीन-हीन एवं अशिक्षित अर्कवंशियों को प्रगति पथ पर सहयोग देने के बजाए अधिकांश राजनीतिज्ञों द्वारा उन्हें भ्रमित करके उनके 'वोटों' का इस्तेमाल किया जाता रहा। आजादी के बाद, दुर्भाग्य से कई अर्कवंशी बाहुल्य विधानसभा एवं लोकसभा क्षेत्रों के सुरक्षित हो जाने के कारण उन क्षेत्रों से अर्कवंशी समाज के लोग चुनाव लड़ने से वंचित होते रहे। अतएव, सामान्य स्थिति में जहाँ इन विधानसभा एवं लोकसभा क्षेत्रों से इस समाज के प्रतिनिधि चुनकर जाने चाहिये थे, वहीं इन क्षेत्रों में अर्कवंशी समाज सिर्फ एक

वोट-बैंक बनकर रह गया। इस बहुमूल्य वोट-बैंक का पूरा-पूरा उपयोग करने के बावजूद इन सुरक्षित सीटों से चुने गए जन-प्रतिनिधियों से इस समाज को उपेक्षा एवं धोखे के अतिरिक्त कुछ भी नहीं मिला।

अर्कवंशियों का बहुमूल्य वोट-बैंक हमेशा-हमेशा के लिये हथियाने के उद्देश्य से कुछ क्षेत्रों में जाति विशेष के प्रतिनिधि, आर्थिक एवं शैक्षिक रूप से पिछड़े अर्कवंशियों को भ्रमित करके इस वंश की पहचान मिटाने पर ही तुल गये। वोट-बैंक की राजनीति के चलते, इन चालबाज प्रतिनिधियों की मिलीभगत में कुछ छद्म इतिहासकारों ने अर्कवंश के इतिहास पर अतिक्रमण कर उसमें विसंगतियां पैदा करनी प्रारम्भ कर दीं। इन सब घटनाक्रमों का सबसे दु:खद पहलू यह था कि निज-स्वार्थ में अंधे होकर, अर्कवंश में मौजूद कुछ विभीषण सबकुछ जानते हुये भी अर्कवंश पर हो रहे सामाजिक घातों एवं प्रतिघातों को न सिर्फ मूकदर्शक बनकर देखते रहे बल्कि विजातीय लोगों की चालबाजियों में बराबर के हिस्सेदार भी रहे। वोटों की गन्दी राजनीति तथा अपनों की गद्दारी ने गौरवमयी अर्कवंश को पूरे समाज की नज़रों में संदिग्ध बना दिया। यह सोचकर आश्चर्य होता है कि क्या ये वही अर्कवंश है जिसके पूर्वजों ने निज-स्वार्थ को कभी कोई महत्त्व नहीं दिया, तथा हर प्रकार के कष्ट सहकर भी अपने वंश की पहचान को कायम रखा और अपने आत्मसम्मान को कभी ठेस नहीं लगने दी।

अर्कवंशी क्षत्रियों! यदि तुम अब भी यूँ ही सोते रहे तो दूसरे लोग घर के भेदियों की मदद से तुम्हारा सर्वस्व लूट ले जायेंगे और जब तक तुम्हारी निद्रा टूटेगी तब तक सब कुछ खत्म हो चुका होगा।

हर जाति, धर्म और समाज में कुछ न कुछ स्वार्थी तत्व अवश्य होते हैं, जिनके कारण उस समाज के पराभव की स्थिति बनी रहती है। आजादी के बाद, अशिक्षा के कारण दयनीय स्थिति को प्राप्त कर चुके इस समाज के कुछ स्वार्थी एवं मौकापरस्त तत्वों की वजह से ही अर्कवंशियों का सामाजिक पतन होता रहा। अन्य जातियों के नेताओं ने अर्कवंशी समाज के मूलभूत अधिकारों का काफी समय तक दुरुपयोग किया है, तथा इनकी सामाजिक प्रतिष्ठा के साथ खिलवाड़ करके इनकी छवि को काफी क्षति पहुँचायी है। ऐसी स्थिति में अर्कवंशी क्षत्रियों का अधिकार ही नहीं, अपितु आवश्यक कर्तव्य भी बन जाता है कि वे न सिर्फ ऐसे स्वार्थी नेताओं का हर तरह से विरोध करें बल्कि अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा के साथ खिलवाड़ करने वाले गद्दारों का भी बहिष्कार करें, जिससे यह वीर क्षत्रिय वंश अपने गौरव को पुनः प्राप्त कर सके।

अर्कवंशी समाज के प्रबुद्ध वर्ग को सतर्क रहते हुये, अपने समाज को सही दिशा प्रदान करने की आवश्यकता है। विपत्तिवश अपने पूर्वजों एवं अपने गौरवशाली इतिहास से विरत हो जाने के बाद अब हमें पुनः अपने गौरव को कायम करना होगा।

तू कब जागेगा अर्कवंश ?

एक प्राचीन एवं गौरवशाली इतिहास के होते हुये भी आज अधिकतर अर्कवंशी क्षत्रिय इससे अनभिज्ञ हैं। इतिहास-बोध खोना अर्कवंशी क्षत्रियों के पतन का एक मुख्य कारण रहा है। इतिहास-बोध खोने के कारण ही अर्कवंशी क्षत्रियों में स्वाभिमान की कमी हो गयी तथा इन्हें जो कुछ भी अन्य जातियों ने बताया उसी को सत्य मानकर ये लोग स्वयं को हीन एवं निम्न समझने लगे। हिन्दू धर्म की कुरीतियों के कुचक्र में फंसकर इनकी स्थिति और भी बदतर होती गयी।

साथियों! इतिहास गवाह है कि कभी कोई भी सामाजिक स्थिति एक सी नहीं रही है। समय के साथ न जाने कितने वंशों का उत्थान एवं पतन हुआ है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि अर्कवंश का सूर्य फिर से उदित होगा तथा उन्हें अपना खोया हुआ सम्मान पुनः प्राप्त होगा; परन्तु कोई भी परिवर्तन अकस्मात् नहीं होता, यह प्रकृति का नियम है। कोई भी व्यक्ति अथवा समाज चमत्कारों की अपेक्षा करके तथा दूसरों पर निर्भर रहकर प्रगति नहीं कर सकता। परिवर्तन के लिये परिश्रम तथा अथक प्रयास करने पड़ते हैं।

संगठन

अपनी स्थिति को सुधारने के लिये अर्कवंशी क्षत्रियों को स्वयं प्रयास करने होंगे तथा अपनी नींद त्यागकर सामाजिक एवं राजनैतिक चेतना पैदा करनी होगी। इसके लिये अर्कवंशी क्षत्रियों को सर्वप्रथम संगठित होना पड़ेगा। बिना संगठित हुये कोई भी प्रयास किया जायेगा तो उसमें असफलता ही प्राप्त होगी। संगठन की महत्ता इसी बात से समझी जा सकती है कि असंगठित होने के कारण महाशक्तिशाली बाघ भी शिकारियों द्वारा मारा जाता है, जबकि एक कमजोर टिड्डी जब झुण्ड बनाकर लयबद्ध तरीके से हमला करती है तो बड़े-बड़ों की नींद हराम हो जाती है। सन् 1857 ई. का स्वतंत्रता संग्राम बड़े-बड़े वीरों की मौजूदगी के बावजूद भी असफल रहा क्योंकि उनमें संगठन की कमी थी। जबकि, महात्मा गांधी ने सिर्फ संगठन के बल पर आम भारतीयों, औरतों, बच्चों और किसानों द्वारा शक्तिशाली अंग्रेजी साम्राज्य का अन्त करा दिया।

हमारे पूर्वजों की सबसे बड़ी ऐतिहासिक भूल यही थी कि संगठित होकर एक सशक्त अर्कवंशी साम्राज्य की नींव डालने के बजाए वे अलग-अलग होकर छोटे-छोटे राज्यों पर शासन करते रहे। उंगली चाहे कितनी ही मजबूत क्यों न हो, मुट्ठी से सदैव कमजोर ही रहती है। अतः संगठन ही शक्ति है। आज जो संगठित हैं, वही शक्तिशाली हैं तथा वही प्रगतिशील हैं। संगठित होने के लिये अर्कवंशी क्षत्रियों को ईमानदार, कर्मठ, दूरदर्शी एवं

विद्वान नेता चुनने होंगे तथा उनका अनुसरण करना होगा। इसके लिए युवा पीढ़ी को जागरूक होना पड़ेगा तथा अथक परिश्रम करना पड़ेगा। इसके साथ ही अर्कवंशी क्षत्रियों आपको ज्ञानी, दृढ़संकल्पी, प्रेमी, परोपकारी, सौहार्दमयी एवं पूर्ण मानवतावादी बनना होगा।

प्रेम से मिलकर चलो, बोलो सभी ज्ञानी बनो,
पूर्वजों की भांति, तुम कर्तव्य के मानी बनो।
हों विचार समान सबके, चित्त गन सब एक हों,
ज्ञान वर्धन कर बराबर, भोग्य पा सब नेक हों।
हो सभी के दिल तथा संकल्प अविरोधी सदा,
मन भरे हो प्रेम से जिससे बढ़े सुख सम्पदा।

सामाजिक चेतना

जब किसी वंश का इतिहास-बोध लुप्त हो जाता है, तो उसकी सामाजिक चेतना भी क्षीण हो जाती है तथा उसके गुणों का ह्रास होने लगता है। धीरे-धीरे अन्य जातियाँ एवं वंश उस पर हावी होने लगते हैं, तथा उस वंश की सामाजिक स्थिति बद से बदतर होती जाती है। उस वंश का स्वाभिमान नष्ट होने लगता है और वह अपने को नीचा समझने लगता है। अर्कवंशी क्षत्रियों के सामाजिक पतन का मनोवैज्ञानिक पहलू यही है। अतः सर्वप्रथम अर्कवंशी क्षत्रियों को अपने अन्दर से यह हीन-भावना निकालनी होगी कि वे छोटे हैं। नीच वही होता है जो खुद को नीचा समझे। जब कोई स्वयं ही अपने आपको नीचा समझेगा तो दूसरे क्यों उसे ऊँचा समझेंगे। हमेशा याद रखिए कि दूसरे आपको वही कहेंगे जो आप खुद को कहेंगे और कहलवाएंगे। सभी ऐतिहासिक प्रमाण आपके पक्ष में होने के बावजूद यदि आप ही खुद को 'क्षत्रिय' कहने में हिचकिचाएंगे तो दूसरों को क्या गर्ज़ पड़ी है कि आपको क्षत्रिय कहें। जब आप क्षत्रिय हैं तो बेझिझक होकर स्वयं को क्षत्रिय कहें तथा वैसी ही मानसिकता रखें, तभी दूसरे आपको क्षत्रिय कहेंगे। क्षत्रियों की मानसिकता ही क्षत्रियोचित न हुयी तो उन्हें क्षत्रिय कौन कहेगा। यह मानसिकता क्षात्र गुणों के विकास द्वारा ही पैदा हो सकती है। क्षत्रियोचित गुणों के बारे में समाज के ठेकेदारों ने बहुत कुछ कहा और लिखा है, तथा कई विरोधाभासी एवं भ्रामक बातों का प्रचार किया है। परिणामस्वरूप घमंडी, लालची, विलासी, क्रूर और स्वार्थी होना ही क्षत्रियों की पहचान बन गयी है। इसी के चलते सभी क्षत्रिय आपस में लड़ते रहे तथा नष्ट होते रहे।

क्षात्र धर्म

सच्चा क्षत्रिय वही है जो हर अवस्था में क्षात्र धर्म का पालन करता है। क्षात्र धर्म का पालन क्षत्रियोचित गुणों के विकास द्वारा ही हो सकता है, अतः प्रत्येक क्षत्रिय में इन गुणों का होना अत्यन्त आवश्यक है। सर्वमान्य क्षत्रियोचित गुण निम्नलिखित हैं:-

स्वाभिमान- क्षत्रिय यदि स्वाभिमानी न हो तो अपने गौरव को कायम नहीं रख सकता।

स्वाभिमान की कमी ही स्वार्थी प्रवृत्तियों को जन्म देती है, तथा व्यक्ति अपने भले-बुरे का निर्णय ठीक ढंग से नहीं कर पाता। इतिहास-बोध होने से स्वाभिमान की भावना का विकास होता है। अतः अर्कवंशी क्षत्रियों को चाहिये कि वे अपनी संततियों को अपने वंश तथा देश के इतिहास का बोध कराकर स्वाभिमानी बनायें। स्वाभिमान से ही उनमें आत्मविश्वास आयेगा तथा उनका चहुँमुखी विकास होगा।

अध्ययनशीलता (शिक्षा)- स्वस्थ अध्ययन से मानव बुद्धि का विकास और दुर्भावनाओं का नाश होता है। कुछ लोग सोचते हैं कि क्षत्रियों का पढ़ाई-लिखाई से क्या वास्ता, पढ़ाई-लिखाई तो पंडितों और मुनीमों का काम है। इस प्रकार के मूर्खतापूर्ण विश्वासों के चलते ही अर्कवंशी क्षत्रियों ने अपने विकास के सभी रास्ते बन्द कर दिये। पढ़े-लिखे न होने की वजह से उनकी सोच संकीर्ण एवं बुद्धि क्षीण हो गयी। दूसरे लोगों ने जो कुछ गलत-सलत बताया, अर्कवंशियों ने बिना सोचे-विचारे उसी को स्वीकार कर लिया। पढ़ाई-लिखाई के अभाव में, देश में हो रहे राजनैतिक एवं सामाजिक परिवर्तनों के बारे में वे कोई जानकारी नहीं रख सके तथा अपना इतिहास-बोध भी खो दिया।

आज का युग तेजी से बदलता हुआ आधुनिक युग है। रोज नये-नये परिवर्तन, नये-नये अविष्कार हो रहे हैं। आज के समय में जो पढ़ा-लिखा नहीं है, उसकी ज़िन्दगी कुएँ में पड़े हुये उस मेंढक के समान है जो कुएँ को ही सारा संसार समझता है। अनपढ़ इंसान की सोच का दायरा सीमित होता है तथा उसे कोई भी आसानी से बेवकूफ बना सकता है। अतः अपने सामाजिक स्तर को सुधारने के लिये अर्कवंशी क्षत्रियों को शिक्षा पर विशेष ध्यान देना होगा तथा अपने पुत्र-पुत्रियों को किसी भी कीमत पर पढ़ाना होगा। पुत्रियों को पढ़ाना इसलिये आवश्यक है क्योंकि पढ़ी-लिखी माँ ही शिक्षा की कीमत समझ सकती है तथा अपनी संतानों को शिक्षित होने के लिये प्रेरित कर सकती है। जिस घर की स्त्रियाँ पढ़ी-लिखी होती हैं, उस घर के लोग स्वस्थ, संस्कारी और उद्यमी होते हैं। अच्छी शिक्षा ही व्यक्ति में दूरदर्शिता, सूझ-बूझ एवं भले-बुरे की समझ पैदा कर सकती है। अतः चाहे कोई भी त्याग करना पड़े अपने बच्चों को पढ़ाना अत्यन्त आवश्यक है, वरना तेजी से बदलते हुये युग में अर्कवंशी क्षत्रिय बहुत पीछे रह जायेंगे। आज के युग में लड़ाई तीर-तलवारों और बन्दूकों से नहीं, बल्कि कलम की ताकत और बुद्धि के इस्तेमाल से जीती जाती है। शिक्षा किस प्रकार किसी वर्ग का सामाजिक स्तर सुधार सकती है इसका जीता-जागता उदाहरण कायस्थ जाति है, जिसने सिर्फ शिक्षा के बल पर अपना सामाजिक स्तर बहुत ऊँचा कर लिया है। अतः प्रगति के लिये शिक्षा अत्यन्त आवश्यक है और इसके महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता।

राष्ट्रप्रेम- राष्ट्रप्रेम की भावना अर्कवंशी क्षत्रियों ने अपने पूर्वजों से पायी है, परन्तु गरीबी एवं उचित अवसरों की कमी की वजह से आधुनिक काल में इसकी अभिव्यक्ति ठीक से नहीं कर पाये हैं। यह अत्यन्त आवश्यक है कि अर्कवंशी क्षत्रिय अपनी संतानों को अपने

वंश के इतिहास के अलावा भारतवर्ष के अन्य महापुरुषों जैसे महात्मा गांधी, सरदार पटेल, डा. बी.आर. अम्बेडकर, स्वामी विवेकानंद, जवाहरलाल नेहरू, भगत सिंह, सुभाषचन्द्र बोस, मौलाना अबुल कलाम आज़ाद, इत्यादि के बारे में जानकारी दें, तथा उनमें राष्ट्रप्रेम की भावना का संचार करें। हर माता-पिता को चाहिये कि वे अपने बच्चों में देश पर मर मिटने की भावना पैदा करें।

संघर्ष क्षमता एवं स्वावलम्बन- आज अर्कवंशी क्षत्रियों को विपरीत परिस्थितियों का सामना करने हेतु इन गुणों से युक्त होना अत्यन्त आवश्यक है। कोई भी व्यक्ति या समाज दूसरों पर निर्भर रहकर कभी उन्नति नहीं कर सकता। अर्कवंशी क्षत्रियों को अपने विकास के रास्ते स्वयं तलाशने होंगे तथा अपने अधिकारों के लिये संघर्षरत होना पड़ेगा। इसके लिये उन्हें 'संगठन ही शक्ति' का नारा बुलंद करना होगा।

धैर्य एवं साहस- जो संकट के समय अविचल रहता है तथा साहस से समस्याओं का सामना करता है, वही सच्चा क्षत्रिय है। अर्कवंशी क्षत्रियों को धैर्य के साथ विकास के मार्ग पर अग्रसर होना पड़ेगा। धैर्य के साथ लक्ष्य प्राप्ति करने वाले लोग न सिर्फ अपना भविष्य उज्ज्वल करते हैं, बल्कि आगे आने वाली पीढ़ियों के लिये प्रेरणास्रोत भी बन जाते हैं।

न्यायप्रियता- सही-गलत तथा नीति-अनीति के मध्य अन्तर करने की क्षमता को न्यायप्रियता कहते हैं। न्यायप्रियता प्रत्येक क्षत्रिय का एक मुख्य गुण होना चाहिये। न्यायप्रिय मनुष्य सत्यवादी एवं निडर होता है और अन्याय को कभी बरदाश्त नहीं करता। निर्बल एवं असहाय लोगों पर जुल्म करने वाले अन्यायी लोगों को क्षत्रिय कहलाने का कोई हक नहीं है। कहावत है कि डर ही समस्त पापों की जड़ होता है। जिस व्यक्ति के अन्दर किसी बात का डर होता है, वही गलत काम करता है और झूठ बोलता है। निर्भीक व्यक्ति ही सत्य का साथ दे सकता है तथा अन्याय का विरोध कर सकता है। अतः निडर व्यक्ति ही न्यायप्रिय हो सकता है। बच्चों को सही-गलत की पहचान कराना तथा उन्हें न्यायप्रिय बनाना माँ-बाप का फर्ज़ है।

उपरोक्त गुणों के अलावा अर्कवंशी क्षत्रियों में आज आधुनिक विचारधारा एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण की भी आवश्यकता है, ताकि वे समाज में फैली कुरीतियों का विरोध कर सकें तथा अन्याय के खिलाफ आवाज उठा सकें। अच्छे समाज का निर्माण चरित्रवान लोग ही कर सकते हैं, तथा अच्छा चरित्र अच्छे गुणों को अपनाकर ही बनाया जा सकता है।

राजनैतिक चेतना

कोई भी सामाजिक बदलाव राजनैतिक चेतना के बिना पूर्ण नहीं हो सकता। किसी भी समाज में सामाजिक चेतना के साथ-साथ राजनैतिक चेतना का भी होना अत्यन्त आवश्यक है, तभी उसका सही विकास हो सकता है। उत्तर प्रदेश में अर्कवंशी क्षत्रियों की राजनैतिक

चेतना का ये आलम है कि आजादी के 58 वर्षों बाद भी वे अब तक अपना कोई भी प्रतिनिधि संसद अथवा विधानसभा में नहीं भेज पाये हैं, जबकि लगभग हर जाति एवं समाज के लोग संसद तथा विधानसभा में चुनकर जा चुके हैं।

भाइयों! दूसरों ने आपका इस्तेमाल सिर्फ वोट-बैंक के रूप में किया है। चुनाव के समय स्वार्थी नेता झूटे वायदे करके एवं प्रलोभन देकर आपके वोटों का इस्तेमाल तो कर लेते हैं, किन्तु विजयी होने के बाद वे अपने वायदे भूल जाते हैं। आपके वोटों द्वारा चुने गये नेताओं ने कभी भी आपके विकास हेतु सार्थक कदम नहीं उठाये हैं। नतीजन आपकी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति वैसी ही है जैसी आज से 100 वर्षों पहले थी। इस अवस्था के जिम्मेदार स्वयं आप हैं। चुनाव के समय कुछ स्वार्थी नेताओं के बहकावे में आकर तथा छोटे-मोटे प्रलोभनों में पड़कर आप-लोग विरोधी खेमों में बँट जाते हैं, तथा अपने वोटों की शक्ति को कमजोर कर लेते हैं। राजनैतिक प्रतिनिधित्व प्राप्त करने के लिये अर्कवंशियों में एकता होनी बहुत जरूरी है। एकता के बिना अधिकारों की मांग करना बेमानी है क्योंकि कमजोर और छुटपुट आवाजों को कोई नहीं सुनता, और शासन तो वैसे भी बहरा होता है। दूसरे लोग तो चाहेंगे ही कि आपमें कभी एकता न हो, ताकि उनकी प्रभुसत्ता बरकरार रहे। अतः अर्कवंशी क्षत्रियों को सचेत हो जाना चाहिये तथा कोई भी चुनाव हो, सोच समझकर योजनाबद्ध तरीके से ही अपने वोटों का इस्तेमाल करना चाहिये। जब तक आप बिना कोई रणनीति बनाये, चुनावों में आपस में लड़ते रहेंगे तब तक आप कहीं भी राजनैतिक प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं कर पाएंगे। अतः स्वार्थी लोगों के बहकावे में आकर आपस में लड़ने के बजाए, सर्वसम्मति से अपने चुनावी उम्मीदवार तय करें और उन्हें जितायें।

अर्कवंशी क्षत्रियों में राजनैतिक एवं सामाजिक चेतना पैदा करने हेतु युवाओं को महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी होगी। राजनैतिक सफलता के लिये युवाओं को कर्मठ, ईमानदार तथा तेज-तर्रार नेता ढूंढने होंगे। सभी बन्धुओं को अपना ध्येय दिमाग में रखना होगा तथा छुटभइया राजनीति से बचना होगा।

अर्कवंशी क्षत्रिय समाज के बुद्धिजीवी प्रतिनिधियों एवं नेताओं को यह बात सदैव ध्यान रहे कि उन्हें ही अर्कवंशी क्षत्रियों के विकास का मार्ग प्रशस्त करना है। कोई भी परिवर्तन सहज ही नहीं हो जाता। इसके लिये निरन्तर प्रयास करने पड़ते हैं तथा मार्ग में मिलने वाली बाधाओं को हिम्मत से पार करना पड़ता है। इतिहास बनाने के लिये ऐतिहासिक काम करने पड़ते हैं। अर्कवंशी क्षत्रियों का समुचित विकास तभी होगा जब वे मानसिक दबाव एवं असुरक्षा की भावना से मुक्त होकर, निर्भयता के साथ विकास के पथ पर अग्रसर होंगे। एक बार शुरुआत हो गयी तो रास्ते अपने आप मिलते चले जायेंगे।

अर्कवंशी बन्धुओं से अनुरोध है कि वे अपने जीवन की आहुति देकर और अपना

सर्वस्व न्यौछावर करके भी पूर्वजों के गौरवशाली इतिहास की रक्षा करें तथा सामाजिक प्रतिष्ठा, देश की एकता एवं अखंडता के लिये सदैव प्राणप्रण से प्रयासरत रहें। इससे अनन्त काल तक अर्कवंशी क्षत्रियों का यशगान होता रहेगा। 'अर्कवंशी क्षत्रियों हेतु राष्ट्रहित ही सर्वोपरि है', यह भावना कूट-कूटकर भरने के उद्देश्य से रचित इस ऐतिहासिक लघु पुस्तिका का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। अर्कवंशियों का हित संगठन के माध्यम से ही सम्भव है, अतएव अर्कवंशी क्षत्रिय भाइयों से पुनः-पुनः अनुरोध है कि शिक्षित बनें, संगठित हों, पाखण्ड से बचें और पाखण्डियों तथा विरोधियों को पहचानें।

आप जानते ही हैं कि जीवन एक संग्राम है। इसमें कायरों को भी लड़ना पड़ता है और शूरवीरों को भी। किसी के हाथ संगीन पकड़ते काँपते हैं, तो कोई जान की बाजी लगाकर दुश्मन से सामना करता है। कठिनाइयाँ, दुःख, मुसीबतें ऐसे ही शत्रु हैं जिनसे हमें लड़ना ही पड़ेगा। जब इनसे पीछा छुड़ाना असम्भव है, तो फिर क्यों न इन्हें साहस के साथ ललकारा जाए? क्यों न हम वीर योद्धाओं के सदृश्य इनसे जूझें? अतः भाइयों, विपरीत परिस्थितियों एवं समय के कुचक्र से भयभीत मत होइये। अच्छे समय के लिये संगठित होकर प्रयासरत और संघर्षरत रहिये, अन्यथा सामाजिक उद्धार एवं राष्ट्रहित एक कल्पना मात्र बनकर रह जायेगा।

तू कब जागेगा अर्कवंश।
सदियां बीतीं सोये तुझको, तेरा वैभव सम्मान लुटे,
अब नींद त्याग अंगड़ायी ले, नहिं निश्चय ही सर्वस्व मिटे।
आक्रमणकारियों ने लूटा, संगठनहीन हो तुम लुटे-पिटे,
रण में नहिं पीठ दिखायी पर, सम्मान हेतु तुम मरे मिटे।
सर्वस्व मिटाकर बचा वंश, तू धन्य-धन्य है अर्कवंश।
तू कब जागेगा अर्कवंश।
मर्यादा रक्खी, प्राण तजे, जीवन बलिदानी भूल गया,
भूला निज भुजबल की ताकत, अरु रण प्रचण्डता भूल गया।
तेरी शक्ति तब क्षीण हुयी, जब फूटा आपस का कुनबा,
तेरा शासन सत्ता प्रभुता, सब कहां गये रणवीर वंश।
तू कब जागेगा अर्कवंश।
संगठनहीन, नेतृत्वहीन है इसीलिए तू शक्तिहीन,
तेरा सर्वस्व सब लूट रहे, तू निर्बल है संगठनहीन।
तुझको विषधर सब समझ रहे, अरु शत्रु बजाते मोह बीन,
है दीन-हीन पर सोच जरा, अब ले सम्भाल शासन युगीन।
तू चेत, चेत रे, चेत अरे, सर्वस्व लुटाता अर्कवंश,
तू कब जागेगा अर्कवंश।

अर्कबंधुओं से अनुरोध

अपने समाज को अन्दर से सशक्त बनाने के लिये निम्नलिखित कुछ बातें अत्यन्त आवश्यक हैं, अर्कवंशी क्षत्रिय बन्धुओं से निवेदन है कि इनका पालन अवश्य करें।

- समाज में शिक्षा के प्रचार-प्रसार को धर्म समझकर अपनायें।
- आपस में एकता बनाये रखें।
- अन्याय से दबें नहीं बल्कि एकजुट होकर उसका विरोध करें। याद रखें कि अन्याय सहने वाला अन्याय करने वाले से भी बड़ा पापी होता है, इसलिए न अन्याय करें और न अन्याय सहें।
- अपना स्वाभिमान और आत्मसम्मान हर हाल में बरकरार रखें। जिस व्यक्ति में आत्मसम्मान नहीं होता वह पशु से भी गया-गुजरा होता है।
- सभी अर्कवंशी बन्धु अपने नाम के आगे 'सिंह' अवश्य लगायें। किसी अन्य उपनाम जैसे 'वर्मा', 'चौधरी' आदि का प्रयोग करके भ्रम न फैलायें। इसके अतिरिक्त जो लोग चाहें वो 'सिंह' के आगे 'अर्कवंशी', 'अर्कबंधु', अथवा 'सूर्यवंशी' उपाधि का प्रयोग करें।
- जहाँ तक सम्भव हो 'अरख' की जगह 'अर्कवंशी' शब्द का प्रयोग करें तथा दूसरों को भी ऐसा करने के लिये प्रेरित करें।

माता-पिताओं के लिये दो शब्द

जैसा कि आप जानते हैं कि बच्चे ही समाज और देश का भविष्य हैं, इसलिये उनकी अच्छी परवरिश होना अत्यन्त आवश्यक है। याद रखिये, आपके बच्चे वैसे ही बनेंगे जैसा आप उन्हें बनायेंगे। कहा गया है, 'बोया पेड़ बबूल का तो आम कहाँ से होय?' इसी प्रकार जब बच्चों में अच्छे संस्कार डाले जायेंगे तभी बच्चे अच्छे बनेंगे। इसके लिए आपको पहले अपने दुर्गुण दूर करने होंगे क्योंकि बच्चों के मुख्य आदर्श उनके माता-पिता ही होते हैं। मनोविज्ञान कहता है कि बच्चों का उचित बौद्धिक एवं शारीरिक विकास उनके वंश की अपेक्षा उनके वातावरण पर अधिक निर्भर करता है। बच्चों को जैसा माहौल मिलता है, वैसा ही उनमें विकास होता है। अच्छे माहौल में पलने वाले बच्चे सुसंस्कारी, सभ्य और आत्मविश्वास से भरे होते हैं, जबकि खराब माहौल में अच्छे से अच्छे गुणवान बच्चे भी कुसंस्कारी हो जाते हैं। अतः अपने बच्चों के सही विकास के लिये निम्न बातों का भी ध्यान रखें :-

- अपने बच्चों को हमेशा पढ़ने और आगे बढ़ने के लिये प्रेरित करते रहें।
- बच्चों की पढ़ाई के साथ कोई समझौता न करें। अपने बच्चों को किसी भी कीमत पर पढ़ायें और उनकी पढ़ाई-लिखाई में विशेष दिलचस्पी रखें। सम्पन्न लोगों का तो ये

परम-कर्तव्य है कि वे अपने बच्चों को अच्छी से अच्छी और ऊँची से ऊँची शिक्षा दिलवायें। शिक्षा के लिये पैसे का मुँह न देखें क्योंकि पैसा तो आना-जाना है परन्तु विद्याधन स्थाई है।

- अपने बच्चों को स्वाभिमानी तथा निडर बनायें और उनमें देशभक्ति और त्याग की भावना का संचार करें।
- बच्चों की साफ सफाई, स्वास्थ्य आदि का विशेष ध्यान रखें तथा उनमें प्रेरणा पैदा करें कि वे अपनी स्वच्छता के प्रति जागरुक रहें। ध्यान रहे कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क का निवास होता है।
- बच्चों के सामने गाली-गलौज, मारपीट व अनावश्यक बातें न करें। इससे बच्चों के दिमाग पर बुरा असर पड़ता है।
- बच्चों के सामने मदिरापान, धूम्रपान और जुआ खेलने से बच्चों में भी इन कुकृत्यों को करने की आकांक्षा पैदा होती है। यह जग-जाहिर बात है कि बच्चे सदैव अपने माँ-बाप की नकल उतारने का प्रयास करते हैं। अतएव, जैसे माँ-बाप होंगे वैसे ही उनके बच्चे बनेंगे। बाप अगर शराबी, गंजेड़ी और जुआड़ी है तो उसका बेटा उसके नक्शे-कदम पर क्यों नहीं चलेगा? अतः यह अति आवश्यक है कि बच्चों के सामने कोई भी अनैतिक कार्य न किया जाये।
- अपने बच्चों को बिना कारण डांटे-फटकारें व मारे-पीटें नहीं, क्योंकि इससे बच्चों में कुंठा पैदा होती है तथा उनके मानसिक विकास पर बुरा असर पड़ता है।
- बच्चों की शारीरिक बनावट, रूप-रंग, इत्यादि की तुलना किसी से न करें। 'तुम काले हो, वह गोरा है', 'वह तुमसे सुन्दर है', 'वो बहुत तेज है, तुम भोंदू हो'- इस प्रकार की बातें करके बच्चों में हीन-भावना न पैदा करें। बच्चों का उत्साह बढ़ाएं, न कि उन्हें निरुत्साहित करें। उन्हें ये सिखाएं कि रूप-रंग की अपेक्षा जीवन में गुणों का अधिक महत्त्व होता है।
- अपने बच्चों के गुणों का विकास करने में अपना पूरा-पूरा योगदान दें। उनके हर अच्छे कार्य के लिए उन्हें शाबाशी अवश्य दें, उनके विकास में दिलचस्पी रखें और उन्हें सदैव प्रोत्साहित करते रहें।
- अपनी इच्छाएँ कभी भी अपने बच्चों पर न थोपें तथा उन्हें उनकी दिलचस्पी अनुसार ही कदम बढ़ाने दें। उन्हें बेवजह रोकने-टोकने की बजाए उन्हें विश्वास में लें तथा उनका उचित मार्गदर्शन करें। इससे उनमें आत्मविश्वास आएगा तथा आत्मनिर्भर होकर निर्णय लेने की क्षमता पैदा होगी।
- लड़के और लड़की में कोई भेदभाव न करें। दोनों की परवरिश एक-समान होनी आवश्यक है।
- बच्चों को अच्छी बातें सिखायें और उन्हें सुसंस्कारी बनायें। बच्चों को अच्छे संस्कार देने में माँ की भूमिका बहुत अहम् होती है। जो माँ अपने बच्चे को बचपन से ही

अच्छी बातें सिखाती है उसके बच्चे कभी नहीं बिगड़ते। अतः माताओं को सदैव ये सावधानी बरतनी चाहिये कि वे अपने बच्चों के सामने कोई गलत बात न करें।

- बच्चों को बुरी संगति से दूर रखना अति आवश्यक है।

युवाओं के लिये चंद बातें

युवाशक्ति ही किसी समाज की असली ताकत होती है। जिस समाज का युवा कमज़ोर होता है, वह पूरा का पूरा समाज ही जर्जर हो जाता है। अतः एक सशक्त समाज के निर्माण के लिये युवाओं की भूमिका सकारात्मक और सार्थक होनी चाहिये। सभी अर्कवंशी युवकों से अनुरोध है कि वे समाज को आगे बढ़ाने में अपना योगदान दें। इसके लिये कुछ बातें आवश्यक हैं:-

- शिक्षित युवकों का धर्म है कि वे समाज में शिक्षा का भरपूर प्रचार-प्रसार करें, तथा समाज में फैली कुरीतियों, जैसे-अंधविश्वास, ढ़ोंग-ढ़कोसला, छुआछूत, दहेज-प्रथा, इत्यादि को दूर करें। समाज के युवा लेखकों को अपने महान पूर्वजों (दशाश्वमेघ यज्ञ कराने वाले महाराजा खड़गसेन, महादानी रानी भीमादेवी, सण्डीला निर्माता महाराजा सल्हीय सिंह, राजा मल्हीय सिंह, इत्यादि) की कहानियाँ कलमबद्ध करके जन-जन तक पहुँचानी चाहिये ताकि आने वाली पीढ़ियां इनसे प्रेरणा ले सकें।
- सभी युवक नशाखोरी, जुआखोरी, इत्यादि बुरी आदतों से दूर रहें तथा अच्छी संगति में रहने का प्रयास करें।
- स्वाभिमानी बनें और निडर होकर अन्याय का विरोध करें।
- अपने-अपने क्षेत्रों में सामाजिक एवं राजनैतिक चेतना का विकास करें, सोये हुये लोगों को जागृत करें और समाज में फैली हुई भ्रान्तियों को दूर करने में अपना योगदान दें।
- देश-दुनिया में होने वाली घटनाओं के बारे में जानकारी रखें। भारतवर्ष के सामायिक मुद्दों और ज्वलनशील समस्याओं, जैसे, जनसंख्या वृद्धि, पर्यावरण विनाश, भ्रष्टाचार, दहेज-प्रथा, इत्यादि के प्रति संवेदनशील रहें, और इनके निवारण में अपना योगदान दें।
- अपने समाज के प्रतिनिधियों का अनुसरण करें तथा दूसरों के षड्यंत्रों से सावधान रहें।
- समाज में संगठन की भावना का संचार करें।
- हमेशा आगे बढ़ने और उन्नति करने की लालसा मन में रखें तथा इसके लिये प्रयासरत रहें, और दूसरों को भी ऊपर उठने के लिये प्रोत्साहित करते रहें। नकारात्मक सोच और निराशावादी दृष्टिकोण से सदैव दूर रहें क्योंकि मनुष्य की प्रगति में ये सबसे बड़े बाधक हैं।

- स्वावलम्बी बनें न कि दूसरों का पिछलग्गू। दूसरों पर आश्रित रहने वाला व्यक्ति जीवन में कभी भी ऊँचाइयां प्राप्त नहीं कर सकता।
- नारी का सदैव सम्मान करें तथा देश पर मर-मिटने की भावना मन में रखें।
- समाज में जनसंख्या-वृद्धि के नियंत्रण में अपना योगदान दें। संतानें उतनी ही होनी अच्छी हैं जिनके लिए आप उत्तम शिक्षा, स्वास्थ्य सुविधा और अच्छा खान-पान उपलब्ध करा सकें। देखा ये गया है कि कुछ लोग संसाधन न होते हुए भी बच्चे जन्मते चले जाते हैं। नतीजा ये होता है कि न कोई बच्चा ठीक से पढ़ पाता है और न ही किसी का खान-पान उचित हो पाता है। भाइयों, महंगाई के इस जमाने में ढेरों औलादों को जन्म देकर उन्हें मज़दूर अथवा मवाली बनाने से अच्छा है कि एक या दो बच्चे ही जन्मे जाएं जिन्हें ठीक तरह से पढ़ाया-लिखाया जा सके और अच्छा इंसान बनाया जा सके।

युवा शक्ति अब आगे आओ, सृजन सैन्य का शंख बजाओ।
बनें युवक सज्जन शालीन, दें समाज को दिशा नवीन।।
करते वही राष्ट्र उत्थान, जिनको है चरित्र का ध्यान।
अधिकारों का वह हकदार, जिसको कर्तव्यों से प्यार।।
पूत सपूत वही कहलाता, जो स्वजाति का नाम बढ़ाता।
पहले क्रांति दिलों में आती, फिर समाज पर वह छा जाती।।

जीवन का उद्देश्य

मनुष्य के जीवन में एक उद्देश्य का होना अत्यन्त आवश्यक है। जिन लोगों के पास कोई लक्ष्य नहीं होता, उनका जीवन उफनाये सागर में भटकते हुए उस जहाज की तरह है जो कभी भी चट्टानों से टकराकर चूर-चूर हो सकता है। उद्देश्य होने से जीवन को एक धारा मिलती है। मंज़िल स्पष्ट हो तो जीवन स्वयं गतिमान हो जाता है। अतः अपने जीवन के बहुमूल्य क्षणों को व्यर्थ नष्ट करने के बजाए अपनी ऊर्जा को जीवन-लक्ष्य की प्राप्ति में लगाइए। याद रखिए, आप ईश्वर की सर्वोत्तम कृति हैं और ईश्वर ने किसी ख़ास उद्देश्य से ही आपको मनुष्य योनि में जन्म दिया है। क्या आप निरर्थक कार्यों में ही इस श्रेष्ट योनि को नष्ट कर देंगे? सिर्फ खाना-पीना, सोना, मल त्यागना और प्रजनन करना ही आपके जन्म का उद्देश्य नहीं है, क्योंकि ये कर्म तो पशु और कीड़े-मकौड़ों की योनि में भी किये जा सकते हैं। यदि सिर्फ निकृष्ट योनियों वाले कर्म ही करने हैं तो अति-विशिष्ट मनुष्य योनि में जन्म पाने का क्या फायदा? मनुष्य योनि की सफलता तभी है जब मनुष्य नित्यकर्मों से अलग कुछ नया करके दिखाये। हमारा जन्म तभी सफल है जब हम कुछ अलग, कुछ बेहतर करके दिखलायें जिससे न सिर्फ भावी पीढ़ियों का मार्ग प्रशस्त हो बल्कि सम्पूर्ण राष्ट्र लाभान्वित हो। राष्ट्र की प्रगति में ही हमारी प्रगति है, राष्ट्र की उत्कृष्टता में ही हमारी श्रेष्टता है। अतः हमारा लक्ष्य ये होना चाहिये कि हम कुछ ऐसा करें जिससे न सिर्फ हमारी पहचान बने बल्कि पूरे देश का नाम हो।

इंसान जैसा सोचता है, वैसा ही वह बन जाता है। आशावादी दृष्टिकोण तथा सकारात्मक सोच रखने वाले लोग कठिन से कठिन लक्ष्य को भी आसानी से प्राप्त कर लेते हैं, जबकि निराशावादी लोगों को आसान सी चीज़ पाने में भी अत्यन्त कठिनाई होती है। कुछ लोगों को हर बात पर अपनी किस्मत को कोसने की आदत होती है। ये लोग किसी भी असफलता का दोष अपने भाग्य पर मढ़ देते हैं। हारने वालों की यही निशानी होती है कि वे योजना-बद्ध तरीके से कार्य करने के बजाए भाग्य के भरोसे बैठे रहते हैं। जीवन-लक्ष्य को पाने के लिए मनुष्य का कर्मशील होना अति आवश्यक है। कर्मवीर लोग प्यासे होने पर कुआँ खोदते हैं जो कि बाद में दूसरों के काम आता है, जबकि अकर्मण्य व भाग्यवादी लोग बूंद-बूंद की आस में आसमान की ओर ताकते रहते हैं और अपनी किस्मत को कोसते रहते हैं। भाग्य पर निर्भर रहने वाले जीवन में कभी कुछ प्राप्त नहीं कर सकते। अपनी, अर्थात जीवन की गरिमा को समझा जाना चाहिए; इस पर जितनी गम्भीरतापूर्वक विचार किया जायेगा उतना ही रहस्य प्रकट होता जायेगा कि प्रगति और दुर्गति का कारण क्या है : अन्यथा बिना अक्षर-नाम सीखे स्नातक बनने का दिवा स्वप्न देखने वाले को कौन रोक सकता है।

अतः भाइयों कर्मवीर बनिये, नए रास्ते खोजिये, लीक से हटकर कुछ अलग करके दिखाइये। आप जैसे भी हैं, जो भी हैं स्वयं को स्वीकार करिये। अपने तथा दूसरों के प्रति अच्छी सोच रखिये। जिस व्यक्ति की सोच में हीनता होती है, उसके गुण और कर्म भी हीन हो जाते हैं। अपने अन्दर कभी किसी भी प्रकार की हीन-भावना मत पनपने दीजिये। जो काम दूसरे कर सकते हैं, वह आप भी कर सकते हैं। ज़रूरत है तो सिर्फ सही प्रयास करने की। अपनी रुचि के अनुसार ही अपना जीवन-लक्ष्य निर्धारित करिये और उसे पाने के लिए योजना-बद्ध प्रयास करिये। अपने गुणों को पहचानिये, उन्हें तराशिये। कठिनाइयों से हार माने बगैर जीवन-पथ पर निरन्तर आगे बढ़ते रहिये और एक दिन मंज़िल स्वतः आगे आकर आपके कदम चूम लेगी।

लहरों से डरकर नौका पार नहीं होती, कोशिश करने वालों की हार नहीं होती।।
नन्हीं सी चींटी जब दाना लेकर चलती है, चढ़ती दीवारों पर सौ बार फिसलती है।
मन का विश्वास रगों में साहस भरता है, चढ़कर गिरना, गिरकर चढ़ना नहीं अखरता है।
आखिर उसकी मेहनत बेकार नहीं होती, कोशिश करने वालों की हार नहीं होती।।
डुबकियां सिंधु में गोताखोर लगाता है, जा-जाकर खाली हाथ लौट आता है।
मिलते न सहज ही मोती गहरे पानी में, बढ़ता दूना उत्साह इसी हैरानी में।
मुट्ठी उसकी खाली हर बार नहीं होती, कोशिश करने वालों की हार नहीं होती।।
असफलता एक चुनौती है, स्वीकार करो, क्या कमी रह गयी, देखो और सुधार करो।
जब तक न सफल हो नींद चैन की त्यागो तुम, संघर्षों का मैदान छोड़ मत भागो तुम।
कुछ किये बिना ही जय-जयकार नहीं होती, कोशिश करने वालों की हार नहीं होती।।